

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110706

$$\begin{array}{r} 1997 \\ 57 \\ \hline 1940 \end{array}$$

110708

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

124-954

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

त्रैमासिक



110706



वर्ष ४५

[नवीन संस्करण]

अंक ४

माघ १९९७

विषय-सूची

लेख	पृष्ठ
प्राचीन हस्तलिखित हिंदी-ग्रंथों की खोज का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण [लेखक—डाक्टर पीतांबरदत्त बड़धवाल, एम० ए०, एल्-एल० बी०, डी० लिट्]	३१३
पृथ्वीराज रासो [लेखक—साहित्यवाचस्पति रायबहादुर श्यामसुंदर-दास, बी० ए०]	३४९
रागमाला [लेखक—नारायण शास्त्री आठले]	३५३
अजयदेव और सोमल्लदेवी की मुद्राएँ [श्री दशरथ शर्मा, एम० ए०]	३५७
चयन	३५६
समीक्षा	३७७
विविध	३६०
सभा की प्रगति	३६८

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

मूल्य प्रति संख्या २॥)

पत्रिका के उद्देश्य

- १—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार ।
- २—हिंदी साहित्य के विविध अंगों का विवेचन ।
- ३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान ।
- ४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन ।

संपादक-मंडल

रामचंद्र शुक्ल

मंगलदेव शास्त्री

केशवप्रसाद मिश्र

वासुदेवशरण अग्रवाल

कृष्णानंद (संपादक)

सूचना

“सब श्रेणी के सभासदों को उनके सभासद होने के वर्षारंभ से सभा की मुखपत्रिका बिना मूल्य दी जायगी । ये सभासद पत्रिका के पुराने अंक और सभा द्वारा प्रकाशित अन्य पत्रिका तथा पुस्तकों की एक एक प्रति ३/४ मूल्य पर ले सकते हैं । परंतु प्रबंधसमिति को अधिकार होगा कि साधारण सभा की अनुमति से किसी विशेष पुस्तक को इस नियम के बाहर रखे ।”

(ना० प्र० सभा का नियम सं० २१)

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३४५

भानु ग्यान हरि चपभजन, कर्म मुकुर जेहि पास ।
 सो देपै निज रूप को, बरनत संतादास ॥
 कर्म उभय निमिषाषजुत, भक्ति जथा भिनसार ।
 ग्यान भानु सम मानिये, संता कहत विचार ॥
 विमल कर्म करि देह ते, मन ते सुमिरे नाम ।
 लपै शान ते रूप निज, संता आठौ जाम ॥

—त्रिकांडबोध

जड़ चेतन दोउ सुन्य में, उपजि उपजि खपि जाहिं ।
 सुन्य न उपजै नहिं खपै, मूरख खंडत ताहि ॥

× × × ×

छपै

प्रथमै ब्रह्मज्ञान दूसरे कहिय रसायन । देवकथा त्रैचतुर वेद ज्योतिष पंचायन ॥
 षष्ठ व्याकरण सप्त धनुद्धर जलतर अष्टक । नौ संगीत विचारि दसौ विद्या करि नाटक ॥
 अश्वरूढ़ दशएक कोक द्वादस भनि त्रै दस । चौर चतुरदश तथा चातुरी पंद्रह कहियस ॥
 पंद्रह विद्या यह जगत् और शेष सब हैं कला । कहि दासहजारी नाम बिनु जान सबै
 यह भ्रम जला ॥

ग्रंथकार सत्यनामी साधु थे । इन्होंने त्रिकांड-बोध के आदि में
 सत्यनामी संप्रदाय के संस्थापक जगजीवनदास की वंदना की है—

सुमिरि सच्चिदानंदधरि, जगजीवन सुषकंद ।
 सतगुरु पूरन ब्रह्म सोइ, भनत नेति जेहि छंद ॥

× × × ×

संता जगजीवन विना, जीवन को फल कौन ।
 बिन पति की पतनी तथा जथा मनुष विन भौन ॥

इस खोज में 'मदनाष्टक' की एक प्रति मिली है जिससे उसके
 रचयिता के संबंध में एक नवीन समस्या खड़ी हो गई है । 'मदनाष्टक'

६

अब्दुल रहीम खानखाना की रचना कही जाती है। परंतु इस बार खोज में प्राप्त एक हस्तलेख के अनुसार यह पठानी-मिश्र की रचना ठहरती है। संभव है कि रहीम को अत्यंत धर्म-परायण होने तथा हिंदू देवताओं में श्रद्धा रखने के कारण—जैसा कि उसकी हिंदी और संस्कृत रचनाओं से ज्ञात होता है—पठानी मिश्र या मुसलमान ब्राह्मण कहा गया हो; परंतु, यह भी असंभव नहीं कि इसका रचयिता कोई भिन्न व्यक्ति ही हो जो ब्राह्मण से मुसलमान होने के कारण पठानी मिश्र कहा जाता हो और जिसने रहीम की सेवा में रहकर अपने स्वामी के नाम से उक्त ग्रंथ की रचना की हो।

नीचे विवरण के साथ दिए गए परिशिष्टों की सूची दी जाती है, जो स्थानाभाव से पत्रिका में नहीं दिए जा सकते।

परिशिष्ट १—ग्रंथकारों पर टिप्पणियाँ।

” २—ग्रंथों के विवरणपत्र (उद्धरण, विषय, लिपि और कहाँ वर्तमान हैं आदि विवरण)।

” ३—उन रचनाओं के विवरणपत्र (उद्धरण, विषय, लिपि और कहाँ वर्तमान हैं आदि विवरण) जिनके लेखक अज्ञात हैं।

” ४—(अ) परिशिष्ट १ में आए हुए उन कवियों की नामावली जो आज तक अज्ञात थे।

(ब) परिशिष्ट १ में आए हुए उन कवियों की नामावली जो पहले से ज्ञात थे, परंतु जिनके इस खोज में मिले हुए ग्रंथ नवीन हैं।

(स) काव्य-संग्रहों में आए हुए उन कवियों की नामावली जिनका पता आज तक न था।

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३४७

हस्तलिखित ग्रंथों की सूची

जो

मथुरा जिले से सन् १९३५-३६-३७ ई० की खोज में सभा

के लिये प्राप्त हुए हैं—

- (१) परशुराम ग्रंथावली—(ले० परशुराम); (२) १—सुंदर-
विलास—(स्वामी सुंदरदास) २—गोपालपटल । ३—वेदांत
अष्टावक्र—(बनारसी) । ४—ज्ञानपञ्चीसी—(बनारसी) । ५—
शिवपञ्चीसी—(बनारसी) । ६—वैराग्यपञ्चीसी—(बनारसी) ।
७—आत्मविचार । ८—ज्ञानसमुद्र—(स्वामी सुंदरदास) । (३)
विक्रमवत्तीसचरित्र ; (४) १—रामजन्म । २—बन्दीस्तुति । (५)
नासिकेतोपाख्यान—(नंददास) । (६) १—भभरगीत । २—
व्यास की वाणी—(व्यास) । ३—वृंदावनसत । ४—गीतगोविंद ।
५—अष्टपदी । ६—ज्योतिषग्रंथ । (७) सुखदेवकृत वेदांतग्रंथ ।
(८) मूर्त्तिपूजाविधि । (९) बालचिकित्सा । (१०) पाँसा केवली ।
(११) सुंदरकांड—(तुलसीदास) । (१२) शनिश्चर की कथा ।
(१३) १—सुंदरशृंगार—(सुंदरदास) । २—बारामासी—(सुंदर-
दास) । (१४) १—प्रबोधचंद्रोदय नाटक (महाराज जसवंतसिंह)
२—सिद्धांतबोध—(महाराज जसवंतसिंह) (१५) अमरवैद्यक ।
(१६) श्यामसगाई । (१७) कर्मविपाक । (१८) रघुवंश । (१९)
तत्त्वबोध । (२०) बृहज्जातक । (२१) चावरी । (२२) विल्वमंगल ।
(२३) मूलरामायण । (२४) घटकर्पकाव्य । (२५) तंत्र-मंत्र । (२६)
हयग्रीवपंजर । (२७) गुणसागर । (२८) पद्मकोश । (२९) चमत्कार-
चिंतामणि । (३०) गोपालरहस्य सहस्रनाम । (३१) राजाधिराज
कवच । (३२) षडांग । (३३) रुद्रयामले अकारादिप्रश्न । (३४)
शिवतांडव । (३५) भूतभैरव महामंत्र । (३६) रेखागणित । (३७)
शनिश्चरमंत्र । (३८) बटुकभैरवस्तोत्र । (३९) विष्णुपंजरस्तोत्र । (४०)
विष्णुसहस्रनाम । (४१) अनंतचौदसी व्रत । (४२) महाविद्यास्तोत्र ।
(४३) कुशकंडिका । (४४) गीता । (४५) धर्म-युधिष्ठिर-संवाद ।

(४६) पार्थिवेश्वर चिंतामणि मंत्र । (४७) सुद्धिदीपिका । (४८)
 पंचमुखी हनुमान कवच । (४९) अल्लोपनिषद् । (५०) कैवल्योपनिषद् ।
 (५१) प्रेमामृतभागवताष्टक । (५२) राधाविनोद काव्य । (५३) नित्य-
 नाथकृत सिद्धांतमंत्रसार । (५४) रघु० षो । (५५) कार्तवीर्य-
 स्तोत्र । (५६) कार्तवीर्यार्जुन कवच । (५७) १—भागवत अष्टमो-
 ध्याय तथा एकादशोऽध्याय । २—भावपंचाध्यायो—(नंददास) ।
 ३—गीतामाहात्म्य । ४—गीतासहिमा । ५—गंगाष्टक । ६—
 अम्बिकास्तोत्र । ७—भवानीष्टक । (५८) १—उषाचरित्र । २—
 रामरक्ष्या । ३—ककारामायण । (५९) दत्तलालकृत बाराखड़ी—
 (दत्तलाल) । (६०) १—ग्रंथचिंतावर्णबोध—(सूरतराम कृत) ।
 २—ककावत्तोसी । ३—चौरासीबोल । ४—नुगरीसुगरी को पद ।
 ५—बारामासी । ६—पदरागवधावण । (६१) १—सुदामाजी की
 बाराखड़ी । २—राधामंगल । ३—जानकीमंगल । ४—ग्वालिनीभूगरो ।
 ५—दानलीला । ६—लेखौ । ७—किंवत् । ८—रामचंद्र की बारा-
 मासी । (६२) १—भ्रमरगीत । २—पद । ३—उषाचरित्र ।
 (६३) १—स्वरोदय । २—रामकवचब्रह्मयामले । ३—सवैया
 बनारसीकृत । ४—संस्कृत रचना । (६४) १—विष्णुसहस्रनाम ।
 २—ब्रह्मजिज्ञासा । ३—स्वरोदय । ४—विष्णुपंजरस्तोत्र । (६५)
 १—विष्णुसहस्रनाम । २—ध्यानमंजरी—(अग्रदास) । ३—सुदामा-
 बाराखड़ी । ४—भगवद्गीतामाला । ५—सप्तश्लोकी भागवत । (६६)
 कृष्णमंगल । (६७) भिन्नरुगीत । (६८) १—गुरुप्रताप । २—समधिन
 को मिलबो खेलबो । ३—भ्रमरगीत । ४—जोगलीला—(उदय) ।
 (६९) १—रासपंचाध्यायो—(नंददास) । २—रसमुक्तावली ।
 ३—वृंदावनशत । ४—वैरागशत । ५—शीघ्रबोध । ६—पद ।
 (७०) १—कौकसार—(आनंद) । २—नखशिख । ३—दामोदरलीला ।
 (७१) कवित्तावली—(देवादास) । (७२) स्वरोदय—(मोहनदास) ।
 (७३) रसपीयूष—(सोमनाथकृत) । (७४) जगन्नाथमहात्म्य । (७५)
 हरिभक्तिप्रकाश—(गंगाराम पुरोहित 'गंग') । (७६) मधुमालती । (७७)
 संतसरन—(शिवनारायण) ।

पृथ्वीराज रासो

[लेखक—साहित्यवाचस्पति रायबहादुर श्यामसुंदरदास, बी० ए०]

इस ग्रंथ के संबंध में बहुत वाद-विवाद चल रहा है, पर अभी तक कोई निश्चित सिद्धांत नहीं स्थिर हुआ है। रायबहादुर महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा तो इसको १६-१७वीं शताब्दी की रचना मानते हैं और 'पृथ्वीराज-विजय' में चंद का कोई उल्लेख न मिलने से उसके व्यक्तित्व में भी संदेह करते हैं। यदि 'पृथ्वीराजविजय' की अखंडित प्रति मिल गई होती तो इस उल्लेख की बात को प्रामाणिकता का आधार, पूर्णतया नहीं तो अंशतः अवश्य, माना जाता। पर दुर्भाग्य से उसकी खंडित प्रति के ही प्राप्त होने का सौभाग्य अब तक प्राप्त हुआ है।

इधर एक नई स्थिति उपस्थित हो गई है जो पृथ्वीराज रासो की वर्तमान लब्ध प्रतियों के विषय में एक जटिल प्रश्न उपस्थित करती है। मुनि जिनविजय जी ने अपने संपादित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' (सिंधी जैन ग्रंथमाला, पुष्प २) में पृथ्वीराज और जयचंद विषयक प्रबंधों में चार ऐसे छंदों को दिया है जिन्हें वे चंद-रचित बताते हैं और इस सिद्धांत पर पहुँचते हैं कि "चंद कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसी ने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई।"

उन चार छंदों में तीन का रूपांतर तो काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो में लग गया है। चौथे का पता अभी तक नहीं लगा है। वे चारों छंद ये हैं—

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(१) मूल

इक्कु बाणु पहु वीसु जु पई कइँवासह मुक्कओ,
 उर भितरी खडहडिउ धीर कक्खँतरि चुक्कउ ।
 बीअं करि संधीउँ भँमइ सूसेसर नंदण !
 एहु सु गडिदाहिमओ खणइ खुद्दइ सइँभरि वणु ।
 फुड छुँडि न जाइ इहु लुम्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह ।
 न जाणउं चंदवलदिउ किं न वि लुट्टइ इह फलह ।

—पृष्ठ, ८६, पद्यांक (२७५) ।

रूपांतर

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्क्यौ ।
 उर उप्पर थरहव्यौ बीर कर्णंतर चुक्क्यौ ॥
 बियो बान संधान हन्यौ सोमेसर नंदन ।
 गाढौ करि निग्रह्यौ षनिव गड्यौ संभरि धन ॥
 थल छोरि न जाइ अभागरौ गाड्यौ गुन गहि आगरौ ।
 इम जंपै चंदवरदिया कहा निघट्टै इय प्रलौ ॥

—रासो, पृष्ठ १४६६, पद्य २३६ ।

(२) मूल

अगहु म गहिदाहिमओ रिपुराय खयं कर,
 कूहु मंत्रु ममठवओ एहु जंबूय (प ?) मिलि जगर ।
 सहनामा सिक्खवउं जइ सिक्खविउं बुज्झइं,
 जंपइ चंदवलिदु मज्झ परमक्खर सुज्झइ ।
 पहु पहुविराय सइँभरि धनो सयंभरि सउणइ समिरिसि,
 कइँवास विआस विसट्ट विणु मच्छि बंधिवद्धओ मरिसि ॥

—पृष्ठ वही, पद्यांक (२७६)

रूपांतर

अगह मगह दाहिमौ देव रिपुराइ पर्यंकर ।
 कूर मंत जिन करौ मिले जंबू त्रै जंगर ॥
 मो सहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै ।

पृथ्वीराज रासो

अण्णै चंद विरह बियौ कोइ एह न बुज्झै ॥

प्रथिराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिस ।

कैमास बलिष्ठ बसीठ विन म्लेच्छ बंध बंध्यौ मरिस ॥

—रासो, पृष्ठ २१८२, पद्य ४७६ ।

(३) मूल

त्रिणिह लक्ष तुषार सबल पापरिअहँ जसु हय,

चऊदसय मयमत्त दंति गज्जंति महामय,

वीस लक्ख पायक सफर फारक धनुदर,

लहूसडु अरु बलु यान सँख कु जाणइ तांह पर ।

छत्तीस लक्ष नराहिवइ विहि विनिडिओ हो किम भयउ ,

जहचंद न जाणउ जलहूकइ गयउ कि मूउ कि धरि गयउ ॥

—पृष्ठ ८८, पद्यांक २८७ ।

रूपांतर

असिय लक्ष तोषार सजउ पण्णर सायइल ।

सहस हस्ति चवसट्ठि गरुअ गज्जंत महाबल ॥

पंच केटि पाइक्क सुफर पाटक्क धनुदर ।

जुध जुधान वार वीर तोन बंधन सद्धनभर ॥

छत्तीस सहस रन नाइवौ विही किम्मान ऐसो कियौ ।

जै चंद राह कवि चंद कहि उदधि बुड्ढि कै धर लियौ ॥

—रासो, पृष्ठ २५०२, पद्य २१६ ।

(४) मूल

जइतचंदु चक्कवइ दवे तुह दूसह पयाणउ ।

धरणि धसविउद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ ।

सेसुमणिहिं संकियउ मुक्कु हय खरिसिरि खंडिओ ।

तुटओ सोहर धवलु धूलि जसुचियतणि मंडिओ ।

उच्छहरिउ रेणु जसगिगय मुक्कवि व (ज)लहु सच्चउ चवइ ।

वगा इंदु बिंदु भुयलु अलि सहस नयण किण परि मिलइ ॥

—पृ० ८८-८९ ।

अब प्रश्न यह उठता है कि कौन किसका रूपांतर है। क्या आधुनिक रासो का अपभ्रंश में अनुवाद हुआ था अथवा असली रासो अपभ्रंश में रचा गया था, पीछे से उसका अनुवाद प्रचलित भाषा में हुआ और अनेक लेखकों तथा कवियों की कृपा से उसका रूप और का और हो गया तथा छेपकों की भरमार हो गई। यदि पूर्ण रासो अपभ्रंश में मिल जाता तो यह जटिल प्रश्न सहज ही में हल हो जाता। राजपुताने के विद्वानों तथा जैन संग्रहालयों को इस ओर दत्तचित्त होना चाहिए।

रागमाला

(संगीतशास्त्र का १६वीं शताब्दी का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ)

[लेखक—श्री नारायण शास्त्री आठले]

संगीतशास्त्र पर भारतीयों ने बहुतेरे ग्रंथ लिखे हैं; परंच उनमें से बहुत थोड़े ही आज तक प्रकाशित हुए हैं। आनंदाश्रम ग्रंथा-वल्लो, पूना ने ई० स० १८६७ में पं० निःशंक शार्ङ्गदेव विरचित संगीत-रत्नाकर नामक बृहत् सटीक ग्रंथ दो भागों में छापकर प्रकाशित किया है। इसके द्वितीय भाग के पंचम परिशिष्ट में इस विषय के १०४ ग्रंथों की सूची रचयिता के नाम-सहित दी हुई है। इसमें प्रस्तुत पुस्तक का नाम 'रागमाला-रत्नमाला, कर्त्ता—क्षेमकरणः' दिया है। इसी की संस्कृत प्रस्तावना के आरंभ में "सत्सव्यनेकेषु संगीतग्रंथेषु कतिपया एव मुद्रणद्वारा प्रकाशिताः सन्ति। मुद्रणार्हा बहवो ग्रंथा वर्तन्ते" यह स्पष्ट लिखा है।

प्रस्तुत ग्रंथ प्राच्यग्रंथ-संग्रहालय उज्जयिनी में गत वर्ष पं० हरिशास्त्री कलमकर के अन्य ग्रंथों के साथ लिया गया। इसमें केवल ११५ श्लोक हैं और इसकी पत्र-संख्या २१ है। कपड़े से तैयार किए मोटे कागज पर बड़े अक्षरों में लिखा होने से पढ़ने में आसान है। प्रथम पत्र के बीचोबीच "अथ रागमालोत्पत्तिप्रारंभः ॥ पत्रे ॥ ॥ पु० महिपत यादव सांकुर कराचे असे ॥ २१ ॥" यह ग्रंथनाम और लिपिकर्त्ता के नाम सहित पाया जाता है। अंत में लेखक ने अपना समयोल्लेख इस प्रकार किया है—“॥ शके ॥१७५१॥ समत् ॥१८८६॥ शार्वरी नामाद्वे ॥ वैसाख कृष्ण ॥१०॥ दशमी ॥ गुरुवासरे ॥ तद्दिने इदं पुस्तकं समाप्तं ॥ ॥६॥ ॥ स्वार्थं परोपकारार्थं स्वयं लिखितं ॥ ॥ श्रीमन्नारिमार्तंड-

कामुद्यलिंगार्पणमस्तु ॥ श्री ॥” इससे मालूम होगा कि यह प्रति ११० वर्ष प्राचीन है। लेखक ने प्रतिलिपि करते समय या तो स्वयं अशुद्ध लिखा हो अथवा जिस पुस्तक पर से प्रतिलिपि की वह अशुद्ध हो। क्योंकि समस्त ग्रंथ में जगह जगह गलतियाँ पाई जाती हैं। ग्रंथ-रचना की समाप्ति का समय ई० स० १५७० है। आफ्रेक्ट महोदय ने इसका परिचय अपने कैटेलोगस कैटेलोगरम, भाग १, पृष्ठ ४६८ पर देते हुए बीकानेर-स्थित महाराजा लायब्रेरी में भी इस पुस्तक का होना लिखा है तथा इस नाम की दो अन्य पुस्तकें कर्णाटक-निवासी पुंडरीक बिट्टल और पं० जीवराज दीक्षित की बनाई हुई होना भी बताया है। इनमें से पुंडरीक बिट्टल कृत रागमाला का समय ई० स० १५७६ है। (दे० Poona Orientalist Oct. 1938. page, 164) इससे यह ज्ञात होता है कि क्षेमकर्ण और पुंडरीक बिट्टल समकालीन थे।

क्षेमकर्ण ने इस ग्रंथ के रचने का कारण प्रथम श्लोक के चतुर्थ चरण में इस तरह दिया है—“रचयति सुखसिद्धयै जाटवाभूपते ज्ञः” इससे ‘जाटवा भूपति के सुखसिद्धि हेतु ग्रंथरचना करता हूँ’ यह अर्थ निकलता है। इसी प्रकार अंतिम ११२-१३ श्लोकों में अपने आश्रयदाता राजाओं का रसपूर्ण वर्णन करते हुए तथा श्लोक ११४ में अपने पिता महेश पाठक का निर्देश करके ग्रंथसमाप्ति-समय भी दिया है। अतः इन श्लोकांशों का यहाँ उद्धृत करना अनुचित न होगा।

प्राचीरेण सम(सुमु)द्रितं परिखया संवेष्टितं दुर्गमं
लोकेशीयमचचीकरं (त्रि) निजभुजैर्दुर्गेंद्रीयाह्वयं ॥
तस्याधो नगरी विभाति विपुला क्षीतस्विनी संनिधौ
तत्राभूत्प्रबलायुराक्षितिभुजां शास्ता नृपो शूरवा ॥
तस्यामस्ति नरैर्द्रवदितपदस्तस्यात्मजो वीरजी
तत्सूनुः खलु जाटलैर्द्रनृपतिः शूरो दृढः संगरे ॥

तद्भूपस्य पुरोहितेन सुधिया श्रीक्षेमकर्णेन वै
वंशे तस्य महेशपाठकमुतेनैषा नवैवाधुना ॥
शाके बाहुनवाब्धि द्र (१४६२) सहिते पद्धे समाप्तीकृता
शुक्ले श्रावणमासि पक्षे कुजे श्रीरागमाला शुभा ॥ ११४ ॥

अंत के ११४ वें श्लोक के उत्तरार्ध का अर्थ यह है कि 'यह शुभ रागमाला नामक पुस्तक शालिवाहन शक १४५२ के श्रावण शुद्ध प्रतिपदा तिथि मंगलवार के दिन समाप्त किया।' इस शक में ७८ जोड़ने से ई० स० १५७० आता है जो कि ऊपर दिया जा चुका है। अतः इसमें संदेह नहीं कि आफ्रेकट महोदय ने यह सन् इसी ग्रंथ से उद्धृत करके अपनी सूची में समाविष्ट किया।

ग्रंथकार ने इसके तीन खंड किए हैं :—(१) राग और उनका परिवार, (२) स्वरूप और (३) उत्पत्ति। राग ६ हैं। इनमें से हर एक की ५ स्त्रियाँ और पुत्र हैं। इन सबकी संख्या कुल मिलाकर ७८ होती है। दिए हुए रागों के नाम प्रचलित नामों से कुछ भिन्न मालूम होते हैं। अतः नीचे कोष्ठक में उद्धृत किए हैं।

क्रमांक	रागनाम	रागिनी (स्त्रियाँ)	पुत्र
१	भैरव	बंगाली, भैरवी, वेलावली, पुण्यकी, स्नेहा	बंगाल, पंचम, मधु, हर्ष, देशाख, ललित, वेलावल, माधव
२	मालकौशिक	गुंडग्री, गांधारी, श्रीहटी, आंध्रेली, धनाश्री	मारु, मेवाड, बर्बल, मिष्टांग, चंद्रकाश, भ्रमर, षोषर, नंदन
३	हिंदोल	तैलंगी, देवगिरी, वासंती, सिंधुरी, आभारी	मंगल, चंद्रबिंब, शुभ्रांग, आनंद, विभास, वर्द्धन, वसंत, विनोद
४	दीपक	कामोदि, पटमंजरी, टोडि, गुजरी, काछेली	कमल, कुसुम, राम, कुंतल, कलिंग, बहुल, चंपक, हेमाल
५	श्री	वैराडी, कर्णाटी, गौडि, सावेरी, रामगरी, सैधवी	सिंधु, मालव, गौड, गंभीर, गुणसागर, विगड, कल्याण, कुंभ, तोगड (भगड)
६	मेघ	मल्लारि, सोरठी, सुहवि, आसावरी, कौकणी	नट, कानर, सारंग, केदार, गुंड, गुंडमल्लार, जालंधर, शंकर

दूसरे खंड में रागों का स्वरूप वर्णन करते हुए कतिपय रागों के आलापने का समय भी दिया है। इसके अनंतर तीसरे खंड में प्रत्येक राग किस तरह उत्पन्न हुआ इसका यथामति वर्णन करके पश्चात् गायकों को चेतावनी देते हुए लिखा है कि “निर्दिष्ट सगय पर ही राग गाना चाहिए, एक में दूसरे को न मिलाना चाहिए। इसके विपरीत कार्य करने से महान् आपत्ति उठानी पड़ती है।” इस आशय का श्लोकांश यह है—

युक्ता गायति यो नरोऽनवरतं रागेऽन्यदीया वधू-

मन्यस्मिन्खलु चान्यदीयतनयं कालेऽप्यनुक्ते तथा ॥

प्रायो याति भवानकं स निरयं × × ×

इससे यह साफ प्रतीत होता है कि अच्छे गायक प्रायः बताए हुए समय के प्रतिकूल किसी भी राग का गान नहीं करते हैं। इस पुस्तक में दिए गए नगरी, राजा तथा रागों की उत्पत्ति इत्यादि विषयों पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परंतु विस्तार-भय से यहाँ इतना ही।

अजयदेव और सोमल्लदेवी की मुद्राएँ

[लेखक—श्री दशरथ शर्मा, एम० ए०]

इस वर्ष की पत्रिका के प्रथम अंक में श्री दुर्गाप्रसादजी ने भारतीय मुद्राओं पर एक सुंदर निबंध लिखा है। उसमें बारहवें चित्र की मुद्रा राजा जयचंद की और इक्कोसवें की किसी सोमल्लदेव की मानी गई है। परंतु वस्तुतः बारहवीं मुद्रा शाकंभरीश्वर राजा अजयदेव की और इक्कोसवीं उनकी रानी सोमल्लदेवी की है। प्रिंसेप ने भी बारहवीं मुद्रा को कन्नौज के राजा जयचंद की ही मुद्रा मानने की भूल की थी; और परवर्ती कई लेखकों ने उनकी इसी भूल को बार बार दुहराया है। परंतु गुरुवर श्री गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा ने टॉड राजस्थान का हिंदी अनुवाद करते समय ही यह निश्चय कर लिया था कि ये मुद्राएँ वस्तुतः अजमेर के संस्थापक महाराजा अजयदेव की हैं। 'पृथ्वीराजविजय' महाकाव्य के पंचम सर्ग में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि अजयदेव ने चाँदी के सिक्के चलाए थे—

स दुर्वर्णमयैर्भूमि रूपकैः पर्यपूरयत् ।

तां सुवर्णमयैस्तत्र कविवर्गस्त्वपूरयत् ॥

कीर्तिं स वर्तमानानां भटैर्जह्ये जयप्रियैः ।

अतीतानागतानां तु रूपकैरजयप्रियैः ॥

यहाँ दुर्वर्ण शब्द श्लिष्ट है। अजयदेव के रूपक दुर्वर्णमय थे क्योंकि वे दुर्वर्ण अर्थात् चाँदी के बने थे और उन पर अक्षर अधिक सुंदर नहीं थे। दूसरे श्लोक से ज्ञात होता है कि ये रूपक 'अजयप्रिय' नाम से प्रसिद्ध थे, और राजा अजयदेव ने संभवतः पुराने राजाओं के सिक्कों को गलाकर उनके स्थान में इन्हीं को प्रचलित कर दिया था। गुजरात

में इसी प्रकार बीसलप्रिय नामक मुद्राएँ प्रचलित थीं। अजयदेव द्वारा प्रचारित इन मुद्राओं का वर्णन कई शिलालेखों में भी मिला है। विक्रम-संवत् १२२८ के धोड़गाँव के शिलालेख से मालूम पड़ता है कि इन्हें भी कलदार रुपयों की तरह खूब बजा बजाकर और परख परखकर लिया जाता था। ठीक शब्द ये हैं—“विजेषुत चाहडेन आत्मीय-पितृपितामहोपार्जि गृहं मूल्ये प्रदत्तं । तत्रैव गृहोत्पन्ने सुस्वरः सुपरी-क्षितहृद्व्यवहारिकतत्कालवर्तमानरौप्यमयीश्रीअजयदेवमुद्राङ्कित द्राम १६ षोडश गृहीतं”। इसी प्रकार विक्रम संवत् १२२५ के एक शिलालेख में भी इनका नाम दिया गया है। कन्नौज के राजा जयचंद्र जयचंद्रादि नाम से प्रसिद्ध थे, परंतु उनका अजयदेव नाम तो अब तक देखने में नहीं आया है।

सोमल्लदेवी चौहानराज अजयदेव की ही रानी थी। पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य से प्रकट है कि इसने भी मुद्राएँ चलाई थीं :—

सोमलेखा प्रियाप्यस्थ प्रत्यहं रूपकैर्नवैः ।

. कृतैरपि न संस्पर्शं कलङ्केन समासदन् ॥

यहाँ रानी का नाम सोमलेखा दिया गया है। परंतु विक्रम संवत् १२२६ के विजोल्यावाले शिलालेख में अजयदेव को ‘सोमल्लदेवी-पति’ लिखा है। इसलिये यह सिद्ध है कि सोमल्लदेवी और सोमलेखा एक ही थीं, और महाराज अजयदेव ने उसके नाम से भी सिक्के चलवाए थे। इन्हीं चित्रवाली मुद्रा इसी सोमल्लदेवी की है। सोमल्लदेवी के सिक्के प्रायः उन्हीं स्थानों में मिले हैं जो किसी समय चौहान साम्राज्य के अंतर्गत थे * ।

* इस विषय पर और अधिक विवेचन के लिये ‘इंडियन-एंटीक्वेरी’ का सन् १९१२, सितंबर मास का अंक देखें ।

चयन

दक्षिणभारत-हिंदी-प्रचारक-सम्मेलन के सभापति का अभिभाषण

दक्षिणभारत-हिंदी-प्रचारक-सम्मेलन, मद्रास के ११वें अधिवेशन के सभापति-पद से पंडित रामनारायण मिश्र ने २१ दिसंबर १९४० ई० के जो महत्त्वपूर्ण अभिभाषण दिया उसके मुख्य अंश यहाँ उद्धृत हैं—

हिंदी का कार्यक्षेत्र चार हिस्सों में बाँटा जा सकता है :

पहला वह क्षेत्र है जहाँ की मातृभाषा हिंदी है; जैसे संयुक्त-प्रांत, बिहार, मध्यप्रदेश, राजपूताना, मध्यभारत और पूर्वी पंजाब* । इस क्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ बड़े बड़े कवि, संत और सुलोक कवि हुए हैं, जिन्होंने हिंदी को अलंकृत किया है ।

साथ ही यहाँ हिंदी-साहित्य का गौरवपूर्ण भंडार छिपा पड़ा है जिसकी ओर यदि ध्यान न दिया गया तो वह नष्ट हो जायगा और भारत के अमूल्य साहित्यिक धन को हम खो बैठेंगे । नागरी-प्रचारिणी सभा ने वर्षों से हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज का विभाग खोल रखा है । जो ग्रंथ मिले हैं, उनमें से बहुतों को प्रकाशित भी किया है ।

हिंदी का दूसरा कार्यक्षेत्र वह है जहाँ की भाषा की शब्दावली में संस्कृत के शब्द पाए जाते हैं और जहाँ की लिपि देवनागरी का ही

* पंजाब अहिंदी प्रांत नहीं कहा जा सकता । पूर्वी पंजाब (लुधियाना, अंबाला, रोहतक, हिसार, करनाल और पानीपत), मध्य पंजाब (काँगड़ा, होशियारपुर, जालंधर, मालवा) और पंजाब के पहाड़ी हिस्से (चंबा, मंडी, सुकेत, कुल्लू, रामपुर, बुशहर, बिलासपुर, सोल्लन आदि) ये सब तो हिंदी के गढ़ हैं । इनके अतिरिक्त अन्य स्थानों में ठेठ पंजाबी बोली जाती है । पंजाबी भी हिंदी ही है । [यह पादटिप्पणी पंडितजी ने बाद में जोड़ दी है ।—सं० ।]

रूपांतर है; जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल। गुजरात के संबंध में तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गांधी ने गुजरात में पैदा होने पर भी हिंदी को व्यापक बनाने की जितनी चेष्टा की है उसके लिये हम लोग सदा उनके अनुगृहीत रहेंगे। महाराष्ट्र के भी हम ऋणी हैं जिसने हिंदी को प्रोत्साहन दिया और अपनाया। बंगाल पहले तो हिंदी की ओर झुका था। राजा राममोहन राय ने हिंदी में पुस्तकें लिखी थीं। बाबू शारदाचरण मित्र ने एक-लिपि-विस्तार-परिषद् खोली थी और बाबू नवीनचंद्र राय ने पंजाब में हिंदी का प्रचार किया था। इधर बंगाली विद्वानों ने हिंदी की ओर कुछ कम ध्यान दिया है। उनको अपनी मधुर भाषा पर स्वाभाविक अभिमान है, पर हिंदी के राष्ट्रभाषा बनने से किसी प्रांत की भाषा दब नहीं जायगी। यह आशंका निराधार है; क्योंकि राष्ट्रभाषा का प्रयोग तो अंतःप्रांतीय व्यवहार के लिये किया जायगा और यथार्थ में बंगाल में भी किया ही जाता है। मुझे स्वयं पूर्वी बंगाल, उड़ीसा और असम का अनुभव है। वहाँ हिंदी से साधारण काम अच्छी तरह चल जाता है। संतोष की बात है कि सर मन्मथनाथ मुकर्जी और डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने इन दिनों हिंदू सभा के अधिवेशनों में इस बात को स्वीकार किया है कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा-पद को प्राप्त कर सकती है।

हिंदी का तीसरा क्षेत्र वह है जहाँ की भाषा और लिपि हिंदी से बिल्कुल ही भिन्न है, जैसे मद्रास प्रांत। आपके प्रांत में हिंदी स्वच्छ राष्ट्रीय भाषा होने का रूप धारण करती है। यहाँ पहुँचकर उसे आपके ऐसे उत्साही, कार्यकुशल और देशभक्त प्रचारक मिल गए हैं। आपके प्रांत की भाषाएँ बड़ी प्राचीन, संपन्न और उन्नत हैं। हिंदी उन्हें अपने उच्च आसन से उतारने नहीं आई है और ऐसा वह कर भी नहीं सकती। वह तो भावों और विचारों के आदान-प्रदान के लिये आई है। वह यहाँ व्यवहार में सुविधा देना चाहती है। जहाँ वह अपना साहित्य आपके सामने रखती है वहाँ वह इसके लिये भी उत्सुक

है कि आप अपनी तमिल, तेलुगू, मलयालम और कन्नड़ी भाषाओं के उत्तम साहित्य का रसास्वादन उसे कराएँ। शेक्सपियर और उमर खैयाम का अनुवाद तो हम हिंदी में पाते हैं, पर खेद की बात है कि आपके सुकवियों और संतों की ललित एवं उत्कृष्ट रचनाओं के अनुवाद से हिंदी वंचित है। इस कमी को पूरा करने का इधर प्रयत्न आरंभ हो गया है। आपके ये कवि और संत उसी संस्कृति के पोषक थे जिसके पुजारी हम आपकी ही तरह हैं।

सुनने में आया है, पर इस बात पर विश्वास नहीं होता, कि इस प्रांत के कुछ भाइयों की ऐसी धारणा है कि हिंदी का उत्तर भारत से आकर राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होना उत्तर का दक्षिण पर नया आक्रमण ही है, जैसा कि कहा जाता है कि प्राचीन आर्यों ने किया था। राष्ट्र के एकीकरण के पवित्र आयोजन के अंदर जिन्हें आक्रमण की गंध आती है उनके संबंध में क्या कहा जाय। ऐसे लोग अंतः-प्रांतीयता का स्वप्न भी नहीं देख सकते।

और हिंदी का चौथा क्षेत्र भारतवर्ष से बाहर है जहाँ भारतीय लोग अपना देश छोड़कर बस गए हैं; जैसे लंका, ब्रह्मदेश, सिंगापुर, मारिशस, फिजी, ट्रिनिडाड आदि। इस चौथे कार्यक्षेत्र की ओर अभी हमारा ध्यान नहीं गया है। पर इस ओर हमारी असावधानी घातक हो रही है। नागरीप्रचारिणी सभा के एक उत्साही सभासद ने लंका में कुछ पाठशालाएँ खोली थीं। उनमें प्रवासी हिंदुस्तानियों के अतिरिक्त बौद्ध भिक्षुओं ने भी हिंदी पढ़ना शुरू कर दिया था। पर धनाभाव के कारण काम बंद हो गया। हमारे एक दूसरे सभासद ने फारस की खाड़ी के एक टापू मस्कत और मन्ना में नागरीप्रचारिणी सभा खोली है। हमारे पास अनेक स्थानों से बुलाहट के पत्र चले आ रहे हैं। कई उपनिवेशों में हिंदी के पुस्तकालय खुले हैं। ये सब बातें प्रमाणित कर रही हैं कि वहाँ के भारतीयों को अपनी देश-भाषा से प्रेम है, पर इन उपनिवेशों की ओर हमारे नेताओं का ध्यान अब तक नहीं गया। कई प्रमुख हिंदी-भक्तों और दानवीरों का इस

विषय की ओर सभा ने ध्यान दिलाया, पर कुछ फल न निकला। क्या ही अच्छा हो यदि एक बेर महात्मा गांधी इस ओर ध्यान दे दें। उपनिवेशों की अवस्था का ज्ञान उनसे अधिक हमारे देश में किसी को नहीं है। उनके ध्यान देने ही जादू का सा असर होगा। बिखरी हुई शक्तियाँ एकत्र हो जायँगी और इस काम के लिये धन जन की कमी न रह जायगी। पर जब तक इस महान् कार्य के लिये महात्मा जी का आशीर्वाद नहीं प्राप्त होता, क्या तब तक यह काम रुका रहेगा ?

X X X X

आपने अपने एक वार्षिक विवरण में लिखा है कि लिपि के भगड़ों ने आपके मार्ग में कुछ बाधा नहीं डाली। भगड़े दो ही रूप धारण करते हैं—लिपि-संबंधी अथवा भाषा-संबंधी। देवनागरी लिपि पर तो आक्षेप होना ही नहीं चाहिए। उसके संबंध में हजरत ख्वाजा हसन निजामी लिखते हैं—

“हिंदी रस्मउल्लखत हिंदुस्तान का है जो हमारा मौजूदः वतन है और हमारे हिंदू पढ़ोसियों और मुल्की भाइयों का रस्मउल्लखत है। इस वास्ते हमें भी इस रस्मउल्लखत की तरकी और हिफाजत में हिस्सा लेना चाहिए।”

जनाब हारूँ खाँ साहब शेरवानी, प्रोफेसर उसमानियाँ कालेज, हैदराबाद और भी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

“इसमें किसी किस्म का शुबहा करने की गुंजाइश ही नहीं है कि हिंदी में तो हत्तुल मकदूर हर तहरीर का मकसद यही होता है कि पढ़नेवाला वही पढ़े जो लिखनेवाले ने लिखा है।”

आगे चलकर प्रोफेसर साहब ने यहाँ तक कह दिया है कि “मौजूदा रस्मउल्लखत उर्दू में यह खूबी नहीं पाई जाती है।”

इसलिये, जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ, लिपि पर तो भगड़ा होना ही न चाहिए पर हमारे दुर्भाग्य से किसी प्रांत में रोमन और किसी में फारसी लिपि इसके मुकाबिले में खड़ी कर दी जाती है। असम के पहाड़ी हिस्से में कांग्रेसी सरकार ने भी हिंदुस्तानी की शिक्षा

रोमन अक्षरों में देने की आज्ञा दी थी। ईसाई पादरियों की इच्छा पूरी हुई और अब रोमन को हटाना भी एक कठिन समस्या हो गई। कश्मीर में एक कमिटी बैठी थी। उसने सिफारिश की कि प्रारंभिक शिक्षा उर्दू भाषा और फारसी लिपि में दी जाय। उर्दू भाषा तो रह गई, पर वहाँ के महाराज ने देवनागरी को भी रहने दिया। समझ में नहीं आता कि इतनी बात पर वहाँ आंदोलन क्यों खड़ा किया जा रहा है।

भगड़े का दूसरा रूप भाषा-संबंधी है। हमारे सामने 'हिंदुस्तानी' नाम लाकर खड़ा कर दिया गया है। कुछ दिनों तक लोग इसके चक्कर में आ गए थे, पर अब सर तेज बहादुर सप्रू भी, जो 'हिंदुस्तानी एकेडेमी' (प्रयाग) के कई बरस तक सभापति थे, इस शब्द से दूर भागते हैं और लखनऊ-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर श्री हबीबुल्ला साहब ने स्पष्ट कह दिया है कि हिंदुस्तानी का इस देश में अस्तित्व ही नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि हिंदुस्तानी के नाम पर विदेशी अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग खुल्लमखुल्ला किया जा रहा है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आपने भी हिंदुस्तानी रीडर के दूसरे भाग में साधारण बातचीत में गुरु नानक के मुँह से 'खुदा' शब्द कहलाया है, जब कि हम जानते हैं कि जिन बालकों और बालिकाओं के हाथ में यह पुस्तक पड़ेगी वे अपने घर पर 'खुदा' शब्द का प्रयोग कभी न करते होंगे।

X X X X

अंतःप्रांतीयता के भाव को बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि जो शब्द भिन्न भिन्न प्रांतीय भाषाओं में प्रचलित हों उनके स्थान पर अरबी और फारसी शब्दों को नहीं लाना चाहिए। मैं यह भ्रम दूर कर दूँ कि हम लोग फारसी या अरबी या अँगरेजी के विरोधी हैं। ऐसे जो शब्द आ गए हैं और जिन्हें जनसाधारण समझ लेते हैं उन्हें अवश्य रखना चाहिए। नए आवश्यक शब्दों को भी लेना चाहिए। पर पारिभाषिक शब्दावली में संस्कृत की सहायता के बिना काम नहीं

३६४

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

चलेगा। बहुत से ऐसे शब्द हैं जो पहले से संस्कृत में मौजूद हैं। उन्हें छोड़कर हम अरबी या अँगरेजी के शब्द नहीं लेंगे।

× × × ×

हिंदी को सांप्रदायिकता से दूर रखना है। यह हिंदू और मुसलमान दोनों की बनाई हुई है। यह ठीक है कि हिंदू धर्म के कई सुंदर ग्रंथ हिंदी में हैं, पर यह भी ठीक है कि कई मुसलमानों ने हिंदी में अपने धर्म का गुणगान किया है। हिंदी में एक पुरानी हस्तलिखित पुस्तक मिर्जापुर में एक मुसलमान सज्जन के पास है। दोहे-चौपाइयों में वह मुहम्मद साहब का जीवनचरित है। उसकी भाषा बड़ी ही सुंदर है। उक्त मुसलमान सज्जन नित्य उस पुस्तक का पाठ करते हैं। जायसी, रसखान और रहीम के शुभ नाम से तो लोग परिचित ही हैं। ऐसी अवस्था में सांप्रदायिकता के नाम से हिंदी-उर्दू का भगड़ा खड़ा करना एक प्रकार का देशद्रोह है। हमें आशा है कि दक्षिण भारत इस कलंक से बचा रहेगा।

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का अभिभाषण

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के २६ वे (पूना) अधिवेशन के सभापति श्री संपूर्णानंद का जो महत्त्वपूर्ण अभिभाषण २५ दिसंबर १९४० ई० के अधिवेशन में पढ़ा गया उसके मुख्य अंश यहाँ उद्धृत हैं:—

मैंने अभी पहिले कहा है कि हमारा बाङ्गमय-भंडार उत्कृष्ट कोटि के ग्रंथों से भरता जाता है। यह बात सत्य है पर जिस गति से यह बात हो रही है वह संतोषप्रद नहीं है। × × ×
खेद की बात है कि अभी विज्ञान या दूसरे विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों की माँग नहीं है। दूसरों की तो बात ही न्यायी है, हिंदू विश्वविद्यालय ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया है। नैपाल स्वतंत्र राज्य है और प्राचीन भारतीय संस्कृति का संरक्षक माना जाता है। उसको चाहिए था कि अपनी सीमा में एक विश्वविद्यालय स्थापित करता और राष्ट्रभाषा हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाता। कश्मीर

और बड़ौदा तथा दो एक और राज्य भी ऐसा कर सकते हैं। यदि उनका ध्यान उधर जाय तो उनकी प्रजा में शिक्षा का प्रचार बढ़े, संस्कृति का विकास हो और हिंदी वाङ्मय की वृद्धि और उन्नति हो। मैं समझता हूँ कि यदि हिंदी विद्यापीठ एक पढ़ानेवाला विश्वविद्यालय बन सके और कुछ ऐसे ही और भी विद्यालय खुलें तब भी इस दिशा में कुछ काम हो सकता है। परीक्षाओं की लोकप्रियता तो इस प्रयास की सफलता का सूचक चिह्न है। पर जहाँ माँग की कमी है वहाँ यह भी मानना पड़ेगा कि प्रकाशक अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर रहे हैं। भारत, विशेषतः हिंदू समाज, में दार्शनिक विषयों के अध्ययन के प्रेमियों की बहुत बड़ी संख्या है परंतु दुःख की बात है कि पाश्चात्य को कौन कहे प्राच्य दर्शनों पर भी अच्छी पुस्तकों का अभाव है। भारतीय गणित और ज्योतिष, धर्मशास्त्र और आचार-शास्त्र, कला और वाङ्मय के संबंध में विदेशी भाषाओं में बड़े सुंदर ग्रंथ मिलते हैं। भारतीय दृष्टि और भारतीय आधारों पर समाजशास्त्र पर पुस्तकों के लिखे जाने की आवश्यकता है। अँगरेजी तथा अन्य यूरोपियन भाषाओं में बच्चों की ज्ञानवृद्धि के लिये जैसी पुस्तकें मिलती हैं वैसी केवल हिंदी जाननेवाले प्रौढ़ों को भी उपलब्ध नहीं हैं। मेरा विश्वास है कि यदि इन विषयों पर अच्छे ग्रंथ प्रकाशित किए जायें तो उनके लिये ग्राहकों की कमी न रहेगी। केवल कामचलाऊ पुस्तकों को निकालकर प्रकाशक कुछ पैसे भले ही कमा लें पर हिंदी को उनसे कुछ अधिक आशा रखने का अधिकार है।

हमको अपने कवियों की रचना पर उचित अभिमान है। गद्य भले ही बहुत पुराना न हो, पर पद्य-रचना की परंपरा तो सैकड़ों वर्षों से अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। उसने समय के साथ अपने रूप में भी परिवर्तन किया है। उसने अस्ताचल पर चरण भर के लिये टिके हुए भारत के स्वातंत्र्य-सूर्य को अपने सामने डूबते देखा है, आर्य्य और अनार्य्य संस्कृति का संघर्ष उसकी आँखों के सामने हुआ; उसे उन दरबारों में आश्रय मिला था जहाँ भोग-विलास में डूबकर अपनी

खोई हुई आत्मा की स्मृति भुलाई जाती थी; और आज वह भारत का स्वराज्य आंदोलन तथा पृथ्वी पर नवयुग का प्रसव अपनी आँखों देख रही है। कवि के कानों में जगती के शोषितों और दलितों का क्रंदन है, उसकी आँखों के सामने एक ओर अपमानित भारत का क्लान्त कलेवर और कोटि कोटि नंगों भूखों के कंकाल और दूसरी ओर कारखानों की गगनचुंबी चिमनियाँ और श्रीमानों के नंदनकानन-प्रतिस्पर्धी विलासगृह हैं। उसका हृदय इन बातों से विताड़ित होता है, विचलित होता है। सच्चा कवि इस पृथिवी को छोड़कर भाग नहीं जाता। वह रोता है, पर आँसुओं की झड़ी के पीछे उसे आशा की किरणें भी देख पड़ती हैं। उसकी आँखों के सामने भविष्य का चित्र भी नाच जाता है। वह योगी न सही, पर उसको भी सत्य की अतींद्रिय झलक देख पड़ती है। वह इसलिये कविता कर सकता है कि उसे सत्य का साक्षात्कार हुआ है और सत्य ही सुंदरम् है। जो सच्चा कवि है, कला को जीवन से पृथक् करने की बात नहीं करता। सत्य केवल सुंदर नहीं है, वह शिव भी है; अतः सत्कवि की वाणी में वृषित उत्पीड़ित मानव जाति का संदेश और उपदेश मिलना चाहिए।

मैं आधुनिक कविता को देखता हूँ। मुझे यह भरोसा है कि वह इस युग का प्रतीक बनने का प्रयत्न कर रही है। उसमें निराशा, खोज, शंका, अश्रद्धा, अतृप्ति, संघर्ष, विप्लव, वेदना—वे सब भाव जो आज सहस्र सहस्र भारतीय नर-नारियों को उद्वेलित कर रहे हैं—मिलते हैं पर अभी उसके स्वर में आशा भरी दृढ़ता नहीं है, उसके पास संदेश नहीं है। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही यह अभाव भी दूर होगा और कवि नवयुग का पथ-प्रदर्शक बनेगा। पर इसके लिये उसको तपस्या करनी पड़ेगी। सत्य बिना आयास के नहीं मिलता। तपस्या के साथ त्याग भी चाहिए। व्यास और वाल्मीकि ने जिस मार्ग को प्रशस्त किया है उस पर त्याग, तपस्या और निर्भयता का ही पाथेय काम देता है। जो ऐसा कर सकता है वही समाज का पथ-प्रदर्शक बन सकता है। उसी की वाणी अमर होगी।

अपने लेखकों से एक निवेदन और करना है। मैं भी उनमें से एक हूँ, इसी नाते ऐसा साहस करता हूँ। वह युग-धर्म पहिचानें। हम कहते हैं और ठीक कहते हैं कि जो साहित्य दर्बारों के दूषित वातावरण में पला था वह स्वयं दूषित था—उसमें जनता के हृदयोच्छ्वासों की ध्वनि नहीं थी। पर यही दोष उस साहित्य में भी है और होगा जिसकी सृष्टि आज के मध्यम वर्ग के कृत्रिम वातावरण में होगी। यह जनता—सच्ची जनता—से बहुत दूर है। इसकी अनुभूतियाँ, इसकी आकांक्षाएँ, जनता की मानस उथल-पुथल की छाया से दूर हैं। दो-चार दिन किसी गाँव में बैठकर ग्रामीण जीवन पर रचना करना, उसकी दयनीयता दिखलाना उसकी हँसी उड़ाना है। दया और भिन्ना के टुकड़ों से ही तो धनिक वर्ग और उसके पोछे चलकर पूँछ हिलानेवाला मध्यम वर्ग दलितों, शोषितों, पीड़ितों को धोखा देना चाहता है, उनकी मूक अशांति को उभरने से रोकना चाहता है। यदि आप उनके साथ तन्मयता प्राप्त करके उनके साथ सह अनुभूति नहीं कर सकते तो उन पर दया दिखलाकर उनका अपमान मत कीजिए। आपको प्रगतिशीलता का यश तो मिलता है पर आप पाप के भागी बनते हैं। हम और आप इसी मध्यम वर्ग से निकले हैं पर जब तक हम अपने अर्ध-सुप्त वर्गभाव को जीत नहीं सकते तब तक हमारी रचना में से खरी मुद्रा की टंकार नहीं निकल सकती।

दो शब्द इस संबंध में और कहना चाहता हूँ। न मैं कवि हूँ, न मैंने काव्य का अध्ययन किया है, अतः जो कुछ कहता हूँ वह यह समझकर कि उसमें कोई अधिकारिता नहीं है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक पद्य-काव्य की धारा के कुछ बहक जाने का डर है। पुराने कवियों की रचनाएँ प्रायः पढ़ी नहीं जातीं। यह भूल जाता है कि उनके द्वारा भी भारतीय आत्मा की ही अभिव्यक्ति हुई थी। रीति-काल और दर्बारी कविता जैसे गाली के शब्द हो गए हैं। उनमें भी कुछ मनोविज्ञान की सामग्री है ऐसा स्वीकार नहीं किया जाता। पुराने छंद आधुनिक भावों को व्यक्त करने में सर्वथा अक्षम मान लिए गए

हैं। परिणाम यह हुआ कि परंपरा भग्न हो गई है। आजकल की कविता जैसे शून्य में उद्भूत हुई है। इसमें मुझे दो डर देख पड़ते हैं। प्राचीन काल का प्रत्येक कवि तुलसी, सूर या कबीर नहीं हो सका; आज का प्रत्येक कवि प्रसाद, पंत या निराला न हो सकेगा। फलतः जहाँ उस समय भावों की मुक्त धारा रुक गई थी, वहाँ इस समय भी कविता के प्रवाह के कुछ थोड़े से भावों और संस्कृत के दुरूह शब्दों के मरुस्थल में खो जाने की आशंका है। दूसरा डर यह है कि जो कवि इस देश की पुरानी परंपरा से अलग हो गया है वही विदेशी स्रोतों से स्फूर्ति लेता देख पड़ता है। ऐसी उपमाएँ दी जाती हैं जिनका हमारे जीवन से कोई संबंध नहीं है। उर्दू के कवि ने कमल और अमर को छोड़कर ईरान के गुलाब और बुलबुल को अपनाया, जिनको न उसने देखा था न उसके श्रोताओं ने। जिस भारत में मांस खाना कुछ बहुत अच्छी बात नहीं समझी जाती, जो भारत अपने पूर्वजों के पवित्र सोमरस का पान छोड़ चुका था और सुरापान को निंद्य मानता था उसके सामने उन्होंने कबाब और सीख, शराब और साकी का राग अलापा। यह रचना चाहे कितनी ही श्रुति-मधुर हो पर हमारे समाज की आत्मा के अनुकूल न थी; अतः मुट्ठी भर लोगों तक ही रह गई, लोकप्रियता न प्राप्त कर सकी। मैं चाहता हूँ कि हमारे उदीयमान कवि इस बात को न भूलें।

X

X

X

X

अब मैं उस विषय की ओर आता हूँ जो आज हिंदी के प्रत्येक प्रेमी के हृदय को क्षुब्ध कर रहा है। मैंने आरंभ में ही कहा था कि हिंदी पर चौमुख प्रहार हो रहा है। हम इस प्रहार से डरते नहीं। पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों में हिंदी को राजाश्रय नहीं मिला, उल्टे उसे राज्य की उदासीनता और विरोध का सामना करना पड़ा है। आपत्तियों की गोद में वह पली है। हमको विश्वास है कि वह आज की परिस्थिति को भी भेलने में समर्थ होगी। अमर भारती की इस लाड़ली के स्वर्णों में भारत की राष्ट्रीय आत्मा बोलती है, उसे कोई कुचल नहीं सकता।

फिर भी परिस्थिति को समझ तो लेना ही चाहिए। सरकार की हिंदी और नागरी पर कभी कृपा नहीं रही। जिस लिपि को कोटि कोटि भारतवासी अपनी पवित्र लिपि मानते हैं उसको भारत की मुख्य मुद्रा रूप पर स्थान नहीं है। आप उसे रूप के नोट पर न पाएँगे। सरकार का रेडियो विभाग तो हिंदी के पीछे हाथ धोकर पड़ा है। कहने को तो वह अपने को हिंदी उर्दू से अलग रखकर हिंदुस्तानी को अपनी भाषा मानता है पर उसकी हिंदुस्तानी उर्दू का ही नामांतर है। मैंने शिकायतें सुनी हैं कि टाक्स में संस्कृत के तत्सम शब्दों पर कलम चला दी जाती है। यह हो या न हो, उसकी हिंदुस्तानी के उदाहरण तो हम नित्य ही सुनते हैं। यदि मृग जैसा शब्द भी आ गया तो 'यानी हिरन' कहने की आवश्यकता पड़ती है पर 'शफ़क़', 'तसव्वुर', 'पेशकश', 'तख़य्युल' जैसे शब्द सरल और सुबोध माने जाते हैं। रेडियो विभाग समझता है कि साधारणतया हिंदू मुसलमानों के घर यही बोली बोली जाती है। रेडियो का 'अनाउंसर' कभी नमस्कार नहीं करता, उसकी संस्कृति में 'आदाबअज़' करना ही शिष्टाचार है। संस्कृत शब्दों के शुद्ध उच्चारण न करने की तो शपथ खा ली गई है। नामों तक की दुर्गति कर दी जाती है। आचारिया, विकरमाजीत, इंदर, यह सब तो इनके बाएँ हाथ के खेल हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार ने हिंदी भाषा को बिगाड़ने और जनता में उस संस्कृति का, जिसकी यह भाषा प्रतीक है, विकृत रूप उपस्थित करने के लिये ही इनको नौकर रख छोड़ा है। हिंदू त्योहारों पर अरबी-फारसी शब्दों से लदी ऐसी भाषा में भाषण सुनने में आए हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। इन भाषणों को देनेवाले हिंदू भी होते हैं; स्यात् इनका चुनाव ऐसी बोली बोल सकने की योग्यता के ही कारण होता है। हमको इस ओर सतर्क रहना है। जो लोग रेडियो सुनते हैं उनको संगठित होना चाहिए। मुझे यह जानकर हर्ष होता है कि लखनऊ में एंक्लिसनस असोसिएशन स्थापित हुआ है और आकाशवाणी नाम की एक पत्रिका भी निकाली गई है। केंद्रीय व्यवस्थापक सभा के

सदस्यों को सरकार पर दबाव डालना चाहिए और हिंदी पत्रों को भी इस और ध्यान देना चाहिए ।

मेरे मित्र पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने मेरा ध्यान उस आदेश की ओर आकर्षित किया है जो बुंदेलखंड और युक्तप्रान्त में जनगणना करने वालों को दिया गया है । उनसे कहा गया है कि यदि कोई हिंदी या उर्दू को अपनी मातृभाषा बतलाए तो तुम हिंदुस्तानी लिखो । देखने में तो इसमें अकेले हिंदी के विरुद्ध कोई बात नहीं है पर जहाँ पंजाब और हैदराबाद जैसे प्रदेशों में उर्दू बोलने वालों की संख्या लिखी जाय वहाँ ऐसे प्रांतों में जिनकी भाषा हिंदी है हिंदी का नाम न लिखा जाना उर्दू के साथ खुला पक्षपात है । मुझे बतलाया गया है कि यह बात १८२१ से होने लगी है । मैं नहीं कह सकता कि पहिले इसका विरोध किया गया या नहीं । अब समय थोड़ा रह गया है, फिर भी इसके लिये पूरा आंदोलन करना चाहिए ।

अब मैं हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी के संबंध में कुछ कहना चाहता हूँ । मेरी निज सम्मति से आप अपरिचित नहीं हैं । आप में से बहुतों ने वह पत्र-व्यवहार देखा है, जो पार साल मुझमें और महात्माजी में हुआ था । मेरा अब भी विश्वास है कि मैंने जो सम्मति प्रकट की थी, वह समीचीन है । हमारी भाषा का नाम हिंदी इसे कतिपय मुसलमान लेखकों ने दिया पर हमने इसे अपना लिया । यह नाम हमको प्यारा है, और इसमें सांप्रदायिक या अन्य किसी प्रकार का दोष नहीं है । इसे उर्दू नाम से पुकारने का कोई कारण नहीं है । पृथिवी पर भारत ही तो एक देश नहीं है । दूसरी जगहों में भाषा का नाम देश के नाम पर होता है । फ्रांसीसी, अंगरेजी, जापानी, अरबी, ईरानी—यह सब नाम देशों से संबंध रखते हैं । हिंदी भी ऐसा ही नाम है पर उर्दू में यह बात नहीं है । यह नाम इस देश के नाम से संबंध नहीं रखता । अब यह प्रश्न उठाया जाता है कि राष्ट्रभाषा को न हिंदी कहा जाय, न उर्दू, प्रत्युत हिंदुस्तानी नाम से पुकारा जाय । मैं स्वयं तो उन लोगों में हूँ जो इस बात को

मानने को प्रस्तुत हैं। यदि हिंदुस्तानी कहने भर से काम चल जाय तो यह समझौता बुरा नहीं है। यह देश हिंदुस्तान भी कहलाता ही है पर मुख्य प्रश्न नाम का नहीं, भाषा के स्वरूप का है। विवाद ऊपर से भले ही नाम के लिये किया जाता हो पर उसके भीतर भाषा के स्वरूप का विवाद छिपा है। इस बात को समझकर हमको अपना मत स्पष्ट कर देना है।

हिंदी (या वह हिंदुस्तानी जिसकी मैं कल्पना करता हूँ) जीवित भाषा है और रहेगी। वह मुट्ठी भर पढ़े-लिखों तक ही परि-सीमित न रहेगी। उसके द्वारा राष्ट्र के हृदय और मस्तिष्क का अभिव्यंजन होना है। उसको दार्शनिक विचारों, वैज्ञानिक तथ्यों और हृद्गत भावों के व्यक्त करने का साधन बनना है। हमको भारत के बाहर से आए हुए शब्दों का प्रयोग करने में कोई लज्जा नहीं है। अरबी, फारसी के सैकड़ों शब्द बोले जाते हैं, लिखे जाते हैं। यह बात आज से नहीं, चंद बरदाई और पृथ्वीराज के समय से चली आ रही है। सूर, तुलसी, कबीर, रहीम सबने ही ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। अँगरेजी के शब्दों को भी हमने अपनाया है। योगी की सुषुम्ना नाड़ी में प्राण ले जाने पर जिस दिव्य ज्योति की अनुभूति होती है, उसका वर्णन करते हुए आज से दो सौ वर्ष पहिले चरणदास जी ने लिखा था “सुखमना सेज पर लंप दमकै”। पर ये सब शब्द चाहे जहाँ से आए हों हमारे हैं। आगे भी जो ऐसे शब्द आते जायँगे वे हमारे होंगे। हम उनको हठात् कृत्रिम प्रकार से नहीं लेंगे। वे आप भाषा में अपने बल से मिल जायँगे। पर उनके आ जाने पर भी भाषा हिंदी ही है और रहेगी। जिस प्रकार पचा हुआ भोजन शरीर का अविभाज्य अंग हो जाता है उसी प्रकार वे हिंदी के अंग हैं और होंगे। उनकी पृथक् सत्ता चली जायगी। जीवित भाषाएँ ऐसा ही करती हैं। हम संस्कृत के शब्दों को भी इसी प्रकार अपनाते हैं, उनको हिंदी शब्द बना लेते हैं। इसका बड़ा प्रमाण यह है कि वे हिंदी में आने पर संस्कृत के व्याकरण को छोड़ देते हैं, हिंदी-

व्याकरण के अधीन हो जाते हैं। राजा का बहुवचन राजानः, भुवन का भुवनानि, स्त्री का स्त्रियः नहीं किया जाता। कोई लेखक ऐसे प्रयोग करने का दुस्साहस नहीं करता। संस्कृत व्याकरण के विरुद्ध होते हुए भी 'अंतर्राष्ट्रीय' हिंदी में व्यवहृत है। मैंने शुद्ध रूप चलाना चाहा पर सफल न हुआ। पर शुद्ध उर्दू लेखक सुलतान का बहुवचन सलातीन, मुल्क का मुमालिक, खातून का खवातीन लिखता है। ये शब्द अपना विदेशीपन नहीं छोड़ते और इन्हीं विदेशीपन के अभिमान से भरे हुए शब्दों में ही उर्दू का उर्दूपन है; अन्यथा क्रिया, सर्वनाम, उपसर्ग, अव्यय—वे सब शब्द जो भाषा के प्राण हैं—हिंदी उर्दू में एक ही हैं। हम ऐसी कृत्रिम भाषा को, जो जनता में फैल ही नहीं सकती, हिंदी या हिंदुस्तानी नहीं मान सकते। वह हमारे किसी काम की न होगी। मैं फिर कहता हूँ कि हमको अरबी फारसी के शब्दों से चिढ़ नहीं है। गुजराती, मराठी, बँगला सब में ऐसे शब्द हैं। ऐसे बहुत से घराने हैं, जिनके यहाँ पूजा-पाठ में, विवाहादि उत्सवों में, अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग होता है। बिना बनावट के उनके मुँह से ऐसे शब्द निकल जाते हैं। यह नहीं हो सकता कि आज एकाएक एक वेदपाठी ब्राह्मण और एक हाफिज की भाषा में पूर्णतया साम्य हो। पर जो स्वाभाविक वैषम्य होगा उससे हमारी कोई हानि नहीं होती। हम तो कृत्रिम भाषा के, जिसमें व्यर्थ अरबी फारसी शब्द ढूँँसे जाते हैं, विरुद्ध हैं। मेरा तो यह विश्वास है कि यदि हमारी भाषा में स्वाभाविक प्रकार से एक ही अर्थ के द्योतक दो-तीन शब्द—एक संस्कृत का, एक अरबी या फारसी का—आ जाय तो उससे भाषा का भंडार भरता है और वाङ्मय में सुंदरता आती है। अँगरेजी को लीजिए। एक ही अर्थ में क्वेरी, क्वेश्चन, इंटरोगेशन, इंटरपेलेशन जैसे शब्द आते हैं। इनमें कमशः थोड़ा सा सूक्ष्म प्रयोग-भेद हो गया है। ऐसा हमारे यहाँ भी क्यों न हो? एक अर्थ में बार-बार एक ही शब्द क्यों प्रयुक्त हो?

पर इसके साथ ही एक और बात भी स्पष्ट हो जानी चाहिए। हम प्रचलित शब्दों को निकालना नहीं चाहते। जो नए शब्द स्वाभा-

विक रूप से पूर्णतया हमारे बनकर आ जायँगे हम उनको भी अपना-
यँगे । जो बर्ताव तुकों ने अरबी के साथ किया, हम उसका अनुकरण
नहीं करना चाहते । परन्तु यह भी निश्चित है कि हमारी भाषा में
अधिकतर स्वदेशी अर्थात् संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द रहेंगे ।
यदि इस भाषा को राष्ट्रभाषा कहना है, यदि इसको सीमाप्रांत ही नहीं
वरन् बंगाल और गुजरात, महाराष्ट्र और मलाबार में भी बरता जाना
है तो न केवल वाङ्मय, प्रत्युत साधारण बोलचाल और लिखावट में भी
इस सिद्धांत को मान लेना होगा । दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।

बार बार यह कहा जाता है कि कम से कम युक्तप्रांत की तो
मातृभाषा उर्दू है । मैं ऐसा नहीं मान सकता । हमारे सामने कुछ
हिंदू मूर्तियाँ खड़ी कर दी जाती हैं और उनके मुँह से यह कहला
दिया जाता है कि उनके घरों की भाषा उर्दू है । होगी । हमारे लिये
यह हिंदू-मुसलमान का प्रश्न नहीं है । हमने कबीर, जायसी, रहीम,
रसखान या मीर और अजमेरी को साहित्यकार और हिंदीप्रेमी की
दृष्टि से देखा—उनके धार्मिक विचारों से हमसे कोई सरोकार नहीं ।
पर सरकारी अदालतों के चारों और मँडरानेवाले मुठ्ठी भर व्यक्तियों की
सम्मति प्रामाणिक नहीं हो सकती । युक्तप्रांत में और लोग भी रहते
हैं । जहाँ दिल्ली और लखनऊ 'अरबी मरकज' हैं, वहाँ मथुरा, आगरा,
प्रयाग और काशी भी साहित्यिक केंद्र हैं ।

पर प्रत्यक्ष रूप से उर्दू, या अप्रत्यक्ष रूप से कृत्रिम असार्वज-
नीन हिंदुस्तानी के नाम पर हिंदी का विरोध करनेवाले तर्क से बहुत
दूर हैं । हैदराबाद की भाषा इसलिये उर्दू है कि वहाँ का राजवंश
मुस्लिम है और कश्मीर की भाषा इसलिये उर्दू है कि वहाँ की प्रजा में
अधिक संख्या मुसलमानों की है । पंजाब में उर्दू इसलिये पढ़ानी
चाहिए कि वहाँ ५५ प्रतिशत मुसलमान हैं और बिहार में इसलिये
पढ़ानी चाहिए कि वहाँ मुसलमान १२ प्रतिशत भी नहीं हैं । यह
भाषा का नहीं सांप्रदायिकता का प्रश्न है । हम सबको इस बात का
अनुभव है कि किसी भाषण में जहाँ कोई संस्कृत का तत्सम शब्द आया

३७४

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वहीं उर्दू के हामी बोल उठते हैं कि साहब, आसान हिंदुस्तानी बोलिए, हम इस जुबान को नहीं समझते परंतु हिंदी-प्रेमी क्लिष्ट अरबी फारसी शब्दों की बौछार को प्रायः चुपचाप सह लेते हैं। हिंदुस्तानी नामधारी उर्दू के समर्थकों का द्वेषभाव कहाँ तक जा सकता है, उसका एक उदाहरण देता हूँ। अभी थोड़े दिन हुए राष्ट्रपति अबुलकलाम आजाद को प्रयाग-विश्वविद्यालय के छात्रों की ओर से एक मानपत्र दिया गया। उस पर उर्दू के समर्थकों के मुखपत्र 'हमारी जुबान' ने एक लंबी व्यंगमयी टिप्पणी लिखी। उसने उन शब्दों को रेखांकित किया जो उसकी सम्मति में हिंदुस्तानी में न आने चाहिए। यह कहना अनावश्यक है कि ये सब शब्द संस्कृत से आए हुए थे। यह बात तो कुछ समझ में आती है। यह भी कुछ कुछ समझ में आता है कि इन लोगों की दृष्टि में अरबी, फारसी से निकले हुए दुरुह शब्द सरल और सुबोध हैं। पर विचित्र बात यह है कि मानपत्र का अँगरेजी का कोई शब्द भी रेखांकित नहीं है। यह द्वेषभाव की मर्यादा है। जिस हिंदुस्तानी में अँगरेजी को स्थान हो, पर संस्कृत के शब्द छाँट छाँटकर निकाल दिए जानेवाले हों, वह कदापि इस देश की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती।

X

X

X

मैं समझता हूँ कि अब इस संबंध में मुझे कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मैंने ऊपर जो कुछ कहा है, वह मेरी निजी सम्मति है, परंतु राष्ट्रभाषा के स्वरूप के संबंध में कोई विचारशील और निष्पक्ष व्यक्ति कोई दूसरा मत नहीं रख सकता। मुझे इस बात का हर्ष है कि श्री बा० ग० खेर, श्री राजगोपालाचारी, श्री शरत्चंद्र बोस जैसे लोकनायकों ने मेरे मत का समर्थन किया था। अवश्य ही यह साहमत्य मूल सिद्धांत के साथ था, व्योरे की बातों को तो समय ही निश्चित करेगा। स्वयं महात्माजी ने उस समय जो लिखा था, उसे आप भूले न होंगे—“आपने लिखा है वह सब मुझे मान्य है। कांग्रेस ने भाषा का नामसंस्करण किया है, और कोई कौद रखा नहीं है”।

मैं फिर कहता हूँ, हमको हिंदी नाम प्यारा है, हम इसे छोड़ना नहीं चाहते। फिर भी यदि केवल इतनी ही बात होती तो हम हिंदुस्तानी नाम को सहर्ष मान लेते। पर यहाँ तो प्रश्न भाषा के स्वरूप का है और इस संबंध में हम अपना मत स्पष्ट कर देना चाहते हैं। भाषा भाव और संस्कृति का प्रतीक होती है। हम भारतीय संस्कृति का—उस संस्कृति का, जिसको हिंदू और मुसलमान दोनों ने मिलकर बनाया है, जिसकी धारा ऋग्वेद काल के पहिले से अजस्ररूपेण चली आ रही है, और उस भाषा को—जिसको हिंदू और मुसलमान लेखकों ने मिलकर पुष्ट किया है, जो देववाणी, पाली और प्राकृत की उत्तराधिकारिणी है, जिसकी जड़ों को अनेक वाग्धाराओं ने सिंचित किया है—कुछ प्रमत्त संप्रदायवादियों और उनकी भोली-भाली कठपुतलियों के हाथों नष्ट न होने देंगे। हिंदी ने ऐसे बहुत से आघातों को झेला है। अब भी झेल जायगी, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है।

हिंदी को किसी भी प्रांतीय भाषा से प्रतिस्पर्धा नहीं है। मेरा तो विश्वास है कि प्रांतीय भाषाओं की उन्नति हिंदी की उन्नति में सहायक होगी। इतना ही नहीं, मेरा तो ऐसा विचार है कि व्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी, पूर्वी, मैथिली आदि बोलियों की वृद्धि भी हिंदी की उन्नति में साधक होगी।

मैंने ऊपर बार बार राष्ट्रभाषा शब्द का प्रयोग किया है, मेरा तात्पर्य स्पष्ट है। यों तो बोलचाल और लिखने की भाषा में कुछ अंतर होता ही है, पर मैं राष्ट्रभाषा, साहित्य की भाषा और बोलचाल की भाषा—ऐसी तीन भाषाओं की कल्पना नहीं करता। भाषा तो एक ही है और रहेगी।

भाषा के साथ ही दो शब्द लिपि के संबंध में कहना है। आज-कल लिपि के सुधार का प्रश्न उपस्थित हो गया है। मैं भी समझता हूँ कि कुछ परिशोधन की आवश्यकता है, परंतु ऐसा न होना चाहिए कि केवल छापे की सुविधा के नाम पर हमारी पुरानी परंपरा से नाता तोड़कर एक नए प्रकार की ही लिपि का निर्माण कर डालें। देवनागरी

३७६

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

लिपि भारत के सभी कोनों में न्यूनाधिक प्रचलित है और बिना प्रवल कारणों के उसमें यों ही परिवर्तन न करने चाहिएँ ।

X

X

X

X

एक बात और । मैं चाहता हूँ कि सरकारी कागजों की पूरी छानबीन करके एक प्रामाणिक पुस्तक इस विषय पर निकाली जाय कि जिस समय फारसी सरकारी भाषा के पद से हटी उस समय जो सरकारी आज्ञाएँ निकलीं उनकी किसने और किस प्रकार अवहेलना की और वर्तमान उर्दू के समुदाय में फोर्टविलियम का कहाँ तक हाथ रहा है ।

—कु ।

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३२६

है। इन दोनों उदाहरणों में जो थोड़ा सा अंतर दिखाई देता है, उसका कारण छंद की एवं भाषा की विभिन्नता है। सरोज के उदाहरण का भुकाव ब्रजभाषा की ओर और सुदामाचरित्र के छंदों का खड़ी बोली की ओर है, परंतु सुदामाचरित्र में भी आगे चलकर ब्रजभाषा का पुट आ गया है, जैसा दोहे के ऊपरवाले छंद से प्रकट है। इस आलम का समय १६६६ ई० के लगभग माना गया है। प्रस्तुत ग्रंथ का रचनाकाल अज्ञात है। लिपिकाल सन् १८१६ ई० है।

गंगाबाई या विठ्ठल गिरिधरन रचित पदों के एक संग्रह के विवरण इस त्रिवर्षी में पहली ही बार लिए गए हैं। रचना-काल इस संग्रह में नहीं दिया गया है, किंतु लिपिकाल १७६३ ई० है। गंगाबाई का जन्म क्षत्रिय-कुल में हुआ था। ये महावन में रहती थीं। सुप्रसिद्ध वैष्णवाचार्य गुसाईं विठ्ठलनाथजी इनके गुरु थे। वैष्णवों की वार्ताओं में इनका नाम आया है। इनकी कविता सजीव और मर्मस्पर्शिणी है। पदों के संग्रहों में ऐसे बहुत से पद मिलते हैं जिनमें दो नामों—विठ्ठल और विठ्ठल-गिरिधरन—की छाप पाई जाती है। ये दोनों पृथक् पृथक् कवि हैं। जिन गीतों में विठ्ठल गिरिधरन की छाप है वे सभी गंगाबाई के रचे हुए हैं।

इनका रचनाकाल, स्वामी विठ्ठलनाथ की शिष्या होने के कारण, संवत् १६०७ वि० (१५५० ई०) के लगभग होना निश्चित है; क्योंकि स्वामीजी इस समय में वर्तमान थे (दे० खोज रिपोर्ट १६०५ ई० संख्या ६१; सन् १६०६-०८ ई० संख्या २०० और सन् १६०६-११ ई० संख्या ३२)। नीचे इनके कुछ पद नमूने के लिये दिए जाते हैं—

रानी जी सुख पायो सुत जाय ।

बड़े गोप बधून की रानी हँसि हँसि लागत पाय ॥

बैठी महरि गोद लिये ढोटा आँखी सेज बिछाय ।

बोलि लिये ब्रजराज सबनि मिलि यह सुख देखो आय ॥

जेई जेई बदन बदी तुम हम सों ते सब देहु चुकाय ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

तातै लेहु चौगुनो हम पै कहत जाइ मुसकाय ॥
 हम तो बहुत भये सुख पायो चिरजीवो दोउ भाई ।
 'श्री विठ्ठल गिरिधरन' खिलानो ये बाबा तुम माई ॥

× × × ×

लाल तुम पकरी कैसी बान ।
 जब ही हम आवत दधि बेचन तब हीं रोकत आन ॥
 मन आनंद कहत मुँह की सी नँदनंदन सो बात ।
 घूँघट की ओझल हूँ देखत मन मोहन करि घात ॥
 हँसि हँसि लाल गह्यो तब आँचरा बदन दही जु चखाइ ।
 'श्री विठ्ठल गिरिधरन' लाल नै खाइ के दियो लुटाइ ॥

× × × ×

राग गंधार

जो सुख नैनन आज लह्यो ।
 सो सुख मो पै मोरी सजनी नाहिन जात कह्यो ॥
 हौं सखियन संग श्री बृंदावन बेचन जात दह्यो ।
 नंदकुमार सिलोने ढोटा आँचर धाई गह्यो ॥
 बड़े नैन विसाल सखी री मो तन नैकु चह्यो ।
 मृदु मुसकाइ वानी हँसिही कुँवार कह्यो ॥
 व्याकुल भई धीर नहिं आयो आनंद उँमगि बह्यो ।
 'श्री विठ्ठल गिरिधरन' छबीलो मम उर पैठि रह्यो ॥

दास का बनाया हुआ 'रघुनाथ नाटक' नामक ग्रंथ इस त्रिवर्षी में नवीन मिला है, किंतु दुर्भाग्यवश वह खंडित है। फलस्वरूप कवि के संबंध में उससे कुछ भी ज्ञात नहीं होता और न उसके रचनाकाल एवं लिपिकाल का पता चलता है। सुप्रसिद्ध मिखारीदास उपनाम 'दास' से प्रस्तुत दास अभिन्न जान पड़ते हैं। इसके दो कारण हैं। एक तो दास की रचनाशैली इस 'रघुनाथ नाटक' की रचनाशैली से मिलती है, दूसरे दास की रचनाओं में जिस प्रकार प्रायः श्रीपति इत्यादि उनके पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं के पद के पद लिए गए

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३३१

देखे जाते हैं उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ में भी महाकवि देव को सुप्रसिद्ध—

एक ओर विजन डुलावति है चतुरनारि—

आदि छंद की पूरी छाया मौजूद है। नीचे उदाहरण-स्वरूप उनकी कविता में से कुछ छंद लिखे जाते हैं—

आजु री देखु समेत समाज कियो रितुराज सुहावनो साजु री ।
 साजु री भूषण भूरि सिंगार भयो मनभावतो तेरोइ काजु री ॥
 काजु री जानि यही जिय में कि पेलावन फागु मिलो रघुराजु री ।
 राजु री वारों तिहूँपुर के जो भयो यह औसर होरी के आजु री ॥
 गुंजते भँवर विराग भरे सुर पूरि रहे नव कुंज के पुंज ते ।
 पुंज ते आसै मो देषहि सो छवि काम सवारो वसंत के सुंज ते ॥
 सुंजते फूले गुलाल गुलाब निवारी औ कुंद पलास के गुंज ते ।
 गुंजते कोकिला औ षग राते महागज माते ज्यों पिव गुंज ते ॥

× × × ×

अरुन भयो अंबर दिगंबर सहित शिव

मानो लै गुलाल ही को भसम चढ़ायो है ।

लता द्रुम वेलि भई विद्रुम फल उड़त

रंग सिंधु सरितानु मानो कुसुम भायो है ॥

धवलागिरि नीलागिरि नीलागिरि कैलास औ,

सुमेर विंध्याचल आदि मानौ गेरु लै बनायो है ।

मानसर हंस भए असुन उड़ि उड़ि चले

कागऊ भुसंड मानो कल्प करायो है ॥

× × × ×

वाम ओर जानुकी कृपानिधान के विराजै,

धरे भुजा अस दैषै नृत्य सुषकारी है ।

भरत लषन सत्रुहन पवावइ पान

चँवर डुलावै गावै तन को सँभारी है ॥

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अतर अवीर औ गुलाल छूटै चहुँ दिसि,
 देषे सुर कौतुक विमान चढ़ि भारी है ।
 विष विष देषि कै सुवाँग रीझि रीझि हँसै,
 दास यह ओसर की जात बलिहारी है ॥

‘दास’ नाम की छाप केवल ग्रंथ के अंत में दी गई है । संभवतः नाटक का ग्रंथ होने के कारण उसमें कई भद्दी भूलें हो गई हैं, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों पर ध्यान देने से पता चलता है ।

परशुराम के रचे हुए १३ ग्रंथों के विवरण प्रस्तुत खोज में पहली ही बार लिए गए हैं । इनमें से चार ग्रंथ ‘तिथिलीला’, ‘बारलीला’, ‘बावनी लीला’ और ‘विप्रमतीसी’ विषय और नाम-साम्य के विचार से कबीर के कहे जानेवाले इन्हीं नामों के ग्रंथों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं । इनमें भी अंतिम ग्रंथ तो बहुत कुछ मिलता है ।

‘तिथिलीला’ में कबीर और परशुराम दोनों ही ने अमावस से लेकर पूर्णिमा तक संतोचित विचारों को प्रकट किया है । कबीर कहते हैं, “कबीर मावस मन में गरब न करना । गुरु प्रताप दूतर तरना ॥ पड़िवा प्रीति पीव सं लागी । मंसा मिथ्या तव संकया भागी ॥” परशुराम का कथन है, “मावस मैं तै’ दोऊ डारी । मन मंगल अंतर लै सारी ॥ पड़िवा परमतंत ल्यौ लाई । मन कूं पकरि प्रेम रस पाई ॥” कबीर ने मावस में गर्व या अहं भाव को मिटाया है । परशुराम ने भी “मैं” और “तू” का बाध कर इसी भाव को सम्मुख रखा है । पड़िवा को कबीर मज पर शासन करके पीव से प्रीति स्थिर करते हैं और परशुराम भी मन को वश में करके परमतंत रूपी प्रियतम से ही लौ लगाते हैं । ‘बार’ ग्रंथ में कबीर लिखते हैं, “कबीर बार बार हरि का गुन गाऊँ । गुरु गमि भेद सहर का पाऊँ । सोमवार ससि अमृत भरै । पीवत वेगि तवै निस्तरे ॥” इसी प्रकार परशुराम अपनी ‘बार-लीला’ में कहते हैं, “बार बार निअ राम सँभारूँ । रतन जनम भ्रमवाद न हारूँ ॥ सोमसुरति करि सीतल वारा । देष सकल व्यापक व्यौहारा ॥ सोन बिसरि जाकौ निस्तारा । समदृष्टि होइ सुमरि अपारा ॥” दोनों

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३३३

ही कवि नाम का सुमिरन करते हैं। कबीर सोमवार को जो अमृत भरता है, उसे शीघ्र पीने पर निस्तार होता कहते हैं, और परशुराम सोम को सुरति का शीतल वार कहकर समदृष्टि होकर उसको (नाम को) न बिसारने ही में निस्तार बतलाते हैं। 'बावनी' में कबीर ने उल्लेख किया है, 'बावन अक्षर लोक त्रिय, सब कछु इनहीं माहि'। ये सब धिरि धिरि जाहिगे, सो अधिर इनही में नाहि' ॥ तुरक तरीकत जानिए, हिंदू वेद पुरान। मन समझन के कारनै, कछु एक पढ़ीये ग्यान ॥" और परशुराम लिखते हैं, "श्रीगुरु दीपक उर धरै, तब होय प्रकट प्रकास। अक्षर परचौ प्रेम करि, ज्यों सकल तिमिरि को नास ॥ सत संगति सँग अनुसरै, रहै सदा निरभार। बावन पढ़ै बनाय करि, वदि सोइ आकार ॥" अर्थात् कबीर इन बावन अक्षरों को लोकत्रय कहकर सब कुछ इन्हीं में बताते हैं। इसी प्रकार परशुराम भी इनको सकल तिमिर का हर्ता कहकर उससे 'परचौ' करने का उपदेश देते हैं। इस प्रकार इन ग्रंथों में अनेक स्थलों पर भावसाम्य है। परंतु कबीर के नाम से 'विप्रमतीसी' नाम का जो ग्रंथ मिलता है वह परशुराम की 'विप्रमतीसी' से सर्वथा अभिन्न है।

विप्रमतीसी का मिलान

कबीर

परशुराम

सुनहु सवन मिलि विप्रमतीसी ।	सबको सुणियो विप्रमतीसी ।
हरि बिन बूड़े नाव भरीसी ॥	हरि बिन बूड़े नाव भरीसी ॥
ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै ।	वांमण छै पणि ब्रह्म न जाणै ।
घर मह जगत परिग्रह आनै ॥	घर में जगत पतिग्रह आणै ॥
जे सिरजा तेहि नहिं पहिचानै ।	जिन सिरजे ताकू न पिछाणै ।
कर्म भर्म लै बैठि बषानै ॥	करम भरम कू बैठि वषाणै ॥
ग्रहण अमावस सायर दूजा ।	ग्रहण अमावस थाचर दूजा ।
स्वस्तिक पात प्रयोजन पूजा ॥	सूत गया तव प्रोजन पूजा ॥
प्रेत कनक मुष अंतर वासा ।	प्रेत कनक मुष अंतरिवासा ।

आहुति सत्य होम कै आशा ॥	सती अऊत होम की आसा ॥
उत्तम कुल कलि मोहिं कहावै ।	कुल उत्तम कलि माहि कहावै ।
फिरि फिरि मध्यम कर्म करावै ॥	फिर फिर मध्यम कर्म कमावै ॥
× × ×	× × ×
हंस देह तजि न्यारा होई ।	हंस देह तजि नयरा होई ।
ताकी जाति कहौ धूँ कोई ॥	ताकर जाति कहऊँ दहुँ कोई ॥
श्वेत श्याम की राता पियरा ।	× × ×
अवर्ण वर्ण की ताता सियरा ॥	स्याह सुपेत कि राता पीला ।
हिन्दू तुरक की बूढ़ा बारा ।	अवरण वरण कि ताता सीला ॥
नारि पुरुष मिलि करहु विचारा ॥	अगम अगोचर कहत न आवै ।
कहिये काहि कहा नहिं माना ।	अपणै अपणै सहज समावै ॥
दास कबीर सोई पै जाना ॥	समझि न परै कही को मानै ।
	परसादास होइ सोइ जानै ॥

ऊपर के उद्धरणों पर ध्यान देने से स्पष्ट विदित होता है कि थोड़े से हेर-फेर के साथ दोनों ग्रंथ एक ही हैं। अतएव इनका रचयिता भी एक ही होना चाहिए। दोनों ग्रंथकारों ने अपना अपना नाम भी दे दिया है जिससे स्पष्ट है कि दोनों ही उस पर अपना अधिकार प्रकट करते हैं। परशुराम का रचनाकाल ज्ञात नहीं है। वे कबीर से पहले के हैं या पोछे के, यह भी ज्ञात नहीं। इसलिये पूर्ववर्ती और परवर्ती संबंध से भी इस विषय में कोई निर्णय नहीं हो सकता। परंतु इतना निश्चय है कि औरों की भी कुछ रचनाएँ कबीर के नाम से चल पड़ी हैं। कबीर के नाम से प्रसिद्ध कुछ रचना स्वामी सुखानंद और बखना जी के नाम से मिलती है। कबीर जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति की रचना दूसरों के नाम से चल पड़ेगी, यह कम संभव है। अधिक संभव यही है कि कम प्रसिद्ध लोगों की रचनाएँ कबीर के नाम से चल पड़ी हों और उनके कर्ताओं को लोग भूल गए हों।

परशुराम के ग्रंथों में न तो निर्माणकाल दिया है और न लिपिकाल ही, जीवन-वृत्त भी इनका अज्ञात है। अनुसंधान से ऐसा विदित

होता है कि ये निंबार्क संप्रदाय के थे। इनके कुछ ग्रंथों के विवरण पहले भी लिए जा चुके हैं जिनके अनुसार ये श्रीभट्ट और हरिव्यास-देव जी के शिष्य थे और संवत् १६६० वि० या सन् १६०३ ई० में उत्पन्न हुए थे (दे० खोज रिपोर्ट सन् १८०० ई०, नं० ७५ और दे० अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १८३२-३४ ई०)। प्रस्तुत खोज में मिले हुए 'निज रूप लीला' में भी इन्होंने हरिव्यासदेव का नामोल्लेख किया है—

हरि सुमिरण निर्मल निर्वाण । जा घट बसै सत्ति सोइ प्राण ॥

परसराम प्रभुविण सब काँच । श्री हरिव्यास देव हरि साँच ॥

इनके जितने ग्रंथ इस शोध में मिले हैं उनकी भाषा राजस्थानीपन लिए हुए है। इसके दो कारण हो सकते हैं, या तो लेखक ही राजस्थानी था या लिपिकार वहाँ का रहनेवाला हो।

ये निगुणवादी और सगुणवादी, दोनों विचार-परंपराओं से प्रभावित हुए जान पड़ते हैं। इन्होंने कबीर की तरह निगुण ब्रह्म पर भी कविताएँ की हैं और कृष्णभक्तों की तरह सगुणोपासना पर भी कही हैं। इसके कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं।

निगुण भक्तिकाव्य

अवधू उलटी रामकहाणी ।

उलट्या नीर पवन कू सोधै यह गति विरलै जाणी ॥ टेक ॥

पाँचू उलटि एक घरि आग्रु तब सर पीवण लगा ।

सुरही सिंध एक सँग देष्या दानी कूँ सर लागा ॥ १ ॥

मिरगहि उलटि पारधि वेध्या भीवर मछि वसेषा ।

उलट्या पावक नीर बुझावै संगिम जारी सुवा देष्या ॥ २ ॥

नीचै वरष ऊँच कूँ चढ़ीया वाज वटेरी दाब्या ।

ऐसा अणगत हुआ तमासा छालै साथी सोई छाब्या ॥ ३ ॥

ऐसी कथै कहै सब कोई जो घर तै सो सूर ।

कहि परसा तब चौंकि पहुँता की जस मेत अंकुरा ॥ ४ ॥

३३६

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अवधू उलट्यो मेर चढ़्यो मन मेरा सूनि जोति धुनि लागी ।
 अणभै सबद बजावै विणकर सोई सुरता अनुरागी ॥ टेक ॥
 चढि असमान अषाढ़ा देखै सोइ बढिय बड़भागी ।
 घर बाहर डर कछू नाही सोइ निरभै वैरागी ॥ १ ॥
 रहै अकलप कलपतर सों मिलि कलपि मरै नहिँ सोई ।
 निहचल रहै सदा सोई परसा आवागमण न होई ॥ २ ॥ ६४ ॥

X

X

X

X

सगुण भक्तिकाव्य

राग सारंग

कान्हर फेरि कहौ जु कही तव तोकूं मोरी सूं सरै ।
 सोवत जागो जसोदा उठी सुन सुत सबद ऊँसरै ॥ टेक ॥
 लछमण बाण धनुष दै मेरे मोहि जुद्ध की हूँ स रे ।
 सीया साल को सहै सदादुष करिहूँ असुर विधौं स रे ॥ १ ॥
 प्रगटी आई जुद्ध विद्या बल सुमन सिंधु सारुं सरै ।
 परसराम प्रभु उमगि उठे हरि लीने हाथि हथू सरै ॥ २ ॥ १ ॥

राग गौड़ी

मनमोहन मंगल सुष सजनी निरषि निरषि सुष पाऊं ।
 अति सुंदर सुषसिंधु स्याम घण हूँ तासु मन लाऊं ॥ टेक ॥
 निमषन भजूं तजू निहचौ धरि हरि अपभुवन वसाऊं ।
 जाकौ दरस परस अति दुर्लभ हूँ ताकू सिर नाऊं ॥ १ ॥
 तन मन धन दातार कलपतरु हूँ ताकौ जस गाऊं ।
 अति निर्मलनि देषि भगतिफल मोहि भावै बलि जाऊं ॥ २ ॥
 प्रभु सों प्रेम नेम निहचौं सर्व सदै भलौ मनाऊं ॥
 और उपाय सकल सुष परिहरि हरि सुष मांहि समाऊं ॥ ३ ॥
 सेरु चरण शरण रहि हिल करि मन हरि मनहि मिलाऊं ।
 लज्या लोक वेद की परसा परिहरि दूरि दुराऊं ॥ ४ ॥

X

X

X

X

कबीर की तरह इन्होंने भी हिंदू मुसलमानों के ऐक्य-विषयक कविताएँ की हैं, जिससे पता चलता है कि अन्य कृष्णभक्त कवियों की तरह ये देशसुधार के संबंध में सर्वथा मौन नहीं रहे। उदाहरण—

राग गौड़ी

भाई रे का हिंदू का मुसलमान जो राम रहीम न जाणा रे ।
 हारि गये नर जनम वादि जो हरि हिरदै न समाणा रे ॥
 जठरा अगनि जरत जिन राष्यो गरभ संकट गँवाणा रे ।
 तिहि और तिन तज्यौ न तोकूँ तै' काहै सु भुलाणा रे ॥ १ ॥
 भांडे बहुत कुम्हारा एकै' जिनि थह जगत धद्राणा रे ।
 यह न समझि जिन किनहु सिरजे सो साहिव न पिछाणा रे ॥ २ ॥
 भाई रे हक्क हलालनि आदर दोऊ हरषि हराम कमाणा रे ।
 भिस्ति गई दुरि हाथ न आइहो जग सो मनमाना रे ॥ ३ ॥
 पंथ अनेक नयर उरधर ज्यौ सब का एक विकाणा रे ।
 परसराम व्यापक प्रभु वपु धरि हरि सबको सुरताणां रे ॥ ४ ॥

नीचे उनके शेष ६ ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय देकर उनसे कुछ उद्धरण दिए जाते हैं ।

(१) 'नाथलीला' में महात्माओं और दिव्य व्यक्तियों के नाथांत नाम गिनाए गए हैं, जिनमें से कुछ नाथपंथी भी हैं—

भगति भंडारो जानि के, आइ मिले सब नाथ ।
 परसराम प्रसिद्ध नाम सोइ, भेंटे भरि भरि वाथ ॥
 परसा परम समाधि में, आय मिले बहु नाथ ।
 दिव्यनाथ ए सति करि तू, सुमिरि सुमंगल साथ ॥
 श्रीवद्रीनाथ अनाथ के नाथा । मथुरानाथ भये ब्रजनाथा ।
 गोकुलनाथ गोवर्धननाथा । नारानाथ बृंदावननाथा ॥
 कासीनाथ अजोध्यानाथा । सीतानाथ सति रघुनाथा ।

×

×

×

×

३३८

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अनंत नाथ अचलेसुर नाथा । नेमनाथ श्रीगोरषनाथा ॥
 सोमनाथ सुंदर सुषनाथा । भावनाथ भुवनेस्वरनाथा ॥

× × × ×

सर्वनाथ को नाथ हरि, परसराम भजि सोइ ।
 मनवंछित फल पाइये, फिरि आवागमन न होइ ॥

(२) 'पदावली' में उपदेश, ब्रजलीला तथा भगवान् की अनन्य भक्ति का वर्णन है—

गोविंद मैं वंदीजन तेरा ।
 प्रात समै उठि मोहन गाऊँ तौ मन मानै मेरा ॥ टेक ॥
 कर्तम करम भरम कुल करणी ताकी नाहि न आसा ।
 करूँ पुकार द्वार सिर नाऊँ गाऊँ ब्रह्म विधाता ॥
 परसराम जन करत वीनती सुणि प्रभु अविगत नाथा ॥

(३) 'शेखरनामलीलानिधि' में परम सत्त्व का विवेचन किया गया है—

ओंकार अपार उरि उतरे अंतर पोय । अंतरजामी परसराम व्यापक सब में सोय ॥
 वै तारक वै तत्त्व सब वे पालक प्रतिपाल । वारविणपार विसासु है इतवत सोई आल ॥

× × × × ×

एक अकेला एक रस, एक भाय एक तार । एकाएकी एकही, एक सकल इक सार ॥

× × × × ×

हरि अगणित नाम अनंत के, गाए जे गाए गये । अंत न आवै परसराम और अमित योही रहे ॥

(४) 'साँचनिषेधलीला' में विना ईश्वर-चिंतन के अन्य सभी कृत्य-कर्मों की व्यर्थता का वर्णन—

ईसुर अण ईसुर सब ईसुर । जो जाण्यो हरि ईश्वर को ईश्वर ॥
 ब्रह्मा अण ब्रह्मा सब ब्रह्मा । जो जाण्यौ हरि ब्रह्मा को ब्रह्मा ॥
 राजा अण राजा सब राजा । जो जाण्यौ हरि राजा को राजा ॥
 मंगल अण मंगल सब मंगल । जो जाण्यो हरि मंगल को मंगल ॥

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३३६

हरि मंगल मंगल सदा, मंगलनिधि मंगलचार ।

परसराम मंगल सकल, हरिमंगल हरण विकार ॥

(५) 'हरिलीला' में हरि की लीला का दार्शनिक विवेचन है—

हरि औतारन कौ हरि आगर । हरि निज नांव नांव कौ सागर ॥

हरि सागर में सकल पसारा । निर्गुण गुण जाकौ व्यौहारा ॥

हरि व्यौहार विचारै कोई । तौ हरि सहज समावै सोई ॥

सोइ भागवत भगत अधिकारी । हरि कीरति लागै जेहि प्यारी ॥

× × × × ×

हरि है अजपा जाप हरि जापा । हरि है तहाँ पुनि नहि पापा ॥

पाप पुन्य हरि कूं नहीं परसै । परसा प्रेम रूप जन दरसै ॥

दरस परस जन परसराम, हरि अमृत भरि पीव ।

ता हरि कूं जिनि वीसरे, अब होइ रहै हरिजीव ॥

(६) 'लीलासमझनी' में विश्व का प्रपंच रूप दिखाया गया है ।

राग गौड़

कैसी कठिन ठगौरी थारी । देख्यौ चरित महा छल भारी ॥

बड़ आरंभ जौ औसर राध्या । ज्यों नलनी सूवा गहि बांध्या ॥

छूटि न सकै अकल कललाई । निर्गुण गुण मैं सब उरभाई ॥

उरफि उरफि कोई लहै न पारा । भुरकी लागि बह्यौ संसारा ॥

वहि गये वनजि मांहि समाया । अविगत नाथ न दीपक पाया ॥

दीपक छांड़ि अंध्याहै धावै । त्वस्तु अगह क्यों गहणी आवै ॥

गहणी वस्तु न आइये, वाणी जब कियो विचारि ।

अंध अचेतन आसवसि, चाले रतन विसारि ॥

× × × ×

(७) 'नचत्रलीला' में नचत्रों का दार्शनिक विवेचन है—

चित्रा चिंताहरण सबूरी । चित्त गयो चारों दिस पूरी ॥

चालि लियो चित चढ्यो चितारै । हरि की चरचा चार विचारै ॥

सोइ चेतन चित्त की चतुराई । जु चरित्र विसारि चितारै लाई ॥

३४०

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

ज्यों चात्रिग चितवत चित दीने । ल्यों चिह्न धरै सति चौरे चीन्हे ॥
ज्यों चंद चरित चंदार पसारी । पै चित चकोर कै प्रीति सुन्यारी ॥
चाहि अगनि ताकूं नहिं जारै । जिनि कीनूं चक्र चक्रधर सारै ॥

× × × ×

(८) 'निजरूपलीला' में परमात्मा के स्वरूप का विवे-
चन है—

मन क्रम वचन कहतु हों तोही । हरि समान सम्रथ नहिं कोई ॥
हरि भगति हेत वपु धरि औतारे । हरि परम पवित्र पतित उद्गारे ॥
असरण सरण सत्ति हरि नाऊँ । हरि दीन बंधु ताकी बलि जाऊँ ॥
हरि निज रूप निरंतर आही । गावै सुगौ परम पद ताही ॥
निज लीला सुमिरण जो करै । तौ पुनरपि जनमि न सो वपु धरै ॥

× × × ×

हरि सुमिरण निर्मल निर्वाण । जा घट बसै सत्ति सोइ प्राण ॥
परसराम प्रभु विण सब कोच । श्री हरिव्यासदेव हरि साँच ॥
जाकै हिरदै हरि बसै, हरि आरत रतिवत ।
परसराम असरणसरण, सत्ति भगत भगवत ॥

(९) 'निर्वाण' में संसार के त्याग और भगवद्भक्ति का
उपदेश है—

जौ मन विषय विकार न जाही । तौ स्वारथ स्वांग धर्या सुष नाही ॥
नाटक चेटक स्वांग कहाए । हरि विण सकल काल छुलि षाए ॥
मंत्र जंत्र पढ़ि ओषद मूला । उद्र उपाइ करै जग भूला ॥
कर्म करत हरि चीत न आया । पाय सकल ब्रह्म की माया ॥
पाये माया ब्रह्म की, कर्म भर्म के जीव ।
भज्यो न केवल परसराम, सोधि सकल वर सीव ॥

× × × ×

कोई जागै नम हरि भजन की बांधि लई जिन टेक ।
मनवा वाचा परसराम प्रेरक सबको एक ॥

बनारसी के चार ग्रंथों 'वेदांत-अष्टावक्र', 'ज्ञानपञ्चीसी', 'शिव-पञ्चीसी' और 'वैराग्यपञ्चीसी' के विवरण इस खोज में लिए गए हैं। इनके कई ग्रंथ पहले भी सूचना में आ चुके हैं (दे० त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट सन् १९०० ई० की संख्या १०४, १०५, १०६, १३२)। 'वेदांत-अष्टावक्र' में वेदांतसंबंधी कुछ तत्त्वों के निरूपण और आत्मज्ञान का विषय विवर्णित हुआ है। यह संस्कृत से अनुवाद हुआ जान पड़ता है। 'ज्ञानपञ्चीसी' में माया-मोह के त्याग और आत्मानुभव का वर्णन है, 'शिवपञ्चीसी' में शिव के नाम तथा स्वरूप का दार्शनिक विवेचन है और 'वैराग्यपञ्चीसी' में संसार की निस्सारता दिखाकर उससे उपराम करने की शिक्षा है। निर्माणकाल केवल 'वैराग्यपञ्चीसी' में दिया है जो संवत् १७५० वि० की रचना है—

एक सात पंचास के संवत्सर मुषकार ।

पौष शुक्ल तिथि धरम की जै जै बृहस्पतिवार ॥

इन सबका लिपिकाल संवत् १८८० वि० इस आधार पर माना गया है कि ये चारों ग्रंथ अनुक्रम से एक अन्य ग्रंथ 'सुंदर-विलास' के साथ एक ही जिल्द में हैं और एक ही व्यक्ति के द्वारा लिखे गए हैं। 'सुंदर-विलास' का लिपिकाल संवत् १८८० वि० है, अतः इनका भी निश्चयपूर्वक यही लिपिकाल होना चाहिए।

रचयिता का नाम केवल 'ज्ञानपञ्चीसी' और 'शिवपञ्चीसी' में आया है, बाकी दो ग्रंथों में नहीं। किंतु 'वेदांतअष्टावक्र' का यह दोहा—

ज्ञानप्रकासहि कह्यो प्रभु मुक्त किहि विधि जानि ।

पुनि वैराग्यहि सो कह्यो तत्त्व लह्यो सर्व शानि ॥ १ ॥

स्पष्ट बतलाता है कि 'ज्ञानप्रकास' और 'वैराग्य' गुरु द्वारा कथन किए गए हैं। ये 'ज्ञानप्रकास' और 'वैराग्य' सिवा 'ज्ञानपञ्चीसी' और 'वैराग्यपञ्चीसी' के अन्य ग्रंथ नहीं हो सकते। और क्योंकि 'ज्ञानपञ्चीसी' का लेखक बनारसी है इसलिये 'वैराग्यपञ्चीसी' का

३४२

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

लेखक भी वही हो सकता है। इस तरह इन चारों ग्रंथों को बनारसी-कृत मान लेना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

‘ज्ञानपञ्चीसी’ और ‘शिवपञ्चीसी’ में **स्याद्वाद** और **पुद्गल** जैसे शब्दों के प्रयोग से रचयिता के जैन होने का प्रमाण मिलता है; क्योंकि ये शब्द जैनशास्त्रों में ही अधिकतर प्रयुक्त होते हैं—

ज्ञानदीप की सिषा संवारै। स्याद्वाद घंटा झणकारै।

आगम अध्यातम चँवर दुलावै। ख्यापक धूप सरूप जगावै॥

—शिवपञ्चीसी।

सुरनर त्रिजग जोनि में नरकनि गोद भमंत।

महामोह की नींद में सोवै काल अनंत॥

जहाँ पवन नहीं संचरै तहाँ न जल कल्लोल।

त्यों सब परिग्रह त्याग तैं मनसा होय अडोल॥

ज्यों बूटी संजोग तैं पारा मूर्छित होय।

त्यों **पुद्गल** सौं तुम मिलै आतम सक्त समोय॥

—ज्ञानपञ्चीसी।

ऐसा जान पड़ता है कि वैराग्य के उदय होने पर ये वेदांत की ओर अधिक झुक गए। वैसे भी उच्च स्तर में सब भारतीय दर्शन प्रायः एक ही हो जाते हैं।

मुनिमान जी बीकानेर के रहनवाले एक जैन लेखक थे। इनका रचा हुआ ‘कवि प्रमोद रस’ नामक एक अपूर्ण वैद्यक ग्रंथ पहले भी खोज में मिल चुका है, जिसका रचनाकाल संवत् १७४६ वि० या सन् १६८६ ई० है (दे० खो० रिपो० सन् १८२०-२२ ई० सं० १०१)।

इस त्रिवर्षी में उनका इसी विषय पर रचा हुआ ‘कवि विनोद-नाथ भाषा निदान चिकित्सा’ नामक नवीन ग्रंथ प्रकाश में आया है। यह संवत् १७४५ वि० या सन् १६८८ ई० में रचा गया था और संवत् १८७६ वि० या सन् १८१६ ई० में लिपिबद्ध हुआ। रचनाकाल का दोहा यह है—

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३४३

संवत् सत्रह सै समै, पैंतालै वैशाख ।

शुक्ल पक्ष पौर्णमासी दिनै, सोमवार वैभाष ॥

अर्थात् १७४५ वि० की वैशाख सुदी ५ सोमवार को उक्त ग्रंथ बना । इन्होंने इस ग्रंथ में अपने गुरु का परिचय इस प्रकार दिया है—

भट्टारक जिनचंद्र गुरु, सब गछ को सरदार ।

खरतर गछ महि मानिलौ, सब जन को सुषकार ॥

जाकौ गछ वासी प्रगट, वाचक सुम्मति मेर ।

ताकौ शिष्य मुनिमान जी, वासी बीकानेर ॥

कियौ ग्रंथ लाहौर में, उपजी बुधि की वृद्धि ।

जो नर राखै कंठ में, सो होवै परसिद्ध ॥

इससे प्रकट है कि वे बीकानेर के खरतर गच्छ के प्रधान भट्टारक जिनचंद्र के शिष्य श्री सुम्मति मेरु के शिष्य, जैन मतावलंबी थे । उनका कहना है कि उन्होंने सर्वसाधारण के लिये संस्कृत समझ सकना कठिन जानकर इस ग्रंथ को भाषा में लिखा है, जिससे सब समझ सकें ।

संस्कृत अर्थ न जानई, सकत न पूरी होइ ।

ताकै बुद्धि परकास कौ भाषा कीनी टोइ ॥

इसमें चिकित्सा के चार चरण, नाड़ी, रोगज्ञान, रोगलक्षण और रोग-चिकित्सा का वर्णन है । इसके आगे चूर्ण प्रकरण, गुटिका प्रकरण, अवलेह प्रकरण तथा रसायन प्रकरण सहित कुल पाँच प्रकरण हैं । इस ग्रंथ का लाहौर में निर्माण हुआ है ।

प्रारंभ में निम्नलिखित कवित्त बंदना-स्वरूप लिखा है—

उदि (त) उदेत जगमग रह्यो चित्र भानु

ऐसेई प्रताप आदि ऋषभ कहति हैं ।

ताको प्रतिबिंब देखि भगवान् रूप लेषि

ताहि नमो पाय पेक्षि मंगल चहति है ॥

ऐसी करौ दया सौही ग्रंथ करौ टोहि टोहि

धरौ ध्यान तब तोहि उमग गहति है ।

३४४

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

बीचन विघन कोऊ अच्छर सरल दोऊ

नर पढ़ै जोऊ सोऊ सुष को लहति है ॥

इसमें जैन तीर्थंकर आदिनाथ और ऋषभनाथ का नाम आया है।

हजारीदास के रचे हुए 'त्रिकांडबोध' और 'शून्यविलास' नामक ग्रंथ इस त्रिवर्षी में पहली ही बार प्रकाश में आए हैं। पहले ग्रंथ का निर्माणकाल संदिग्ध और दूसरे का अज्ञात है। लिपिकाल दोनों का क्रम से १६४० वि० (१८८३ ई०) और १६८८ वि० (१६३१ ई०) है। पहले ग्रंथ में कर्म, उपासना और ज्ञान का वर्णन तीन भागों में हुआ है, और दूसरे में शून्य की महत्ता का वर्णन है जिसमें शून्य को ही समस्त सृष्टि का आधार माना गया है।

हजारीदास के विषय में यह कहा जाता है कि ये जाति के चौहान क्षत्रिय थे। इनके गुरु गजाधरसिंह और ये एक ही फौज में नौकर थे। वहाँ से पेंशन लेकर दोनों बाराबंकी जिला के भूलामई नामक गाँव में रहने लगे। हजारीदास का दूसरा नाम संतदास भी है। संतदास नाम से बनाए हुए उनके कुछ ग्रंथ पहले भी मिले हैं (दे० खो० रि० सन् १६०६-११ ई० सं० २८१)।

इनके बनाए हुए ६० ग्रंथ कहे जाते हैं। 'त्रिकांडबोध' के रचनाकाल का दोहा यहाँ दिया जाता है—

संवत् दिक श्रुति वान सत, तिथि हरि माघो मास।

सुकल पक्ष दिनकर देवस, पूरन ग्रंथ विलास ॥

यदि नियमानुसार गति लें तो सं० ७५४४ होते हैं, जो स्पष्ट अशुद्ध है। यदि वक्र गति न लें तो ४४५७ या १४५७ हो सकते हैं। किंतु विवरणकर्ता ने इसके विरुद्ध रचनाकाल सं० १८६६ वि० (१८१२ ई०) माना है। परंतु किस आधार पर, यह प्रकट नहीं किया। अतएव रचनाकाल संदिग्ध ही है।

इनके दोनों ग्रंथों से कविता के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

सुद्ध होय हिय कर्म करि, भक्ति करै परकास।

लहै मुक्ति पद ग्यान ते, बरनत संतादास ॥

समीक्षा

मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग—लेखक श्री विश्वेश्वर-
नाथ रेऊ ; प्रकाशक आर्यालाजिकल डिपार्टमेंट जोधपुर; मूल्य ५।

हमारे देश के इतिहास में राजपूतों का इतिहास बहुत महत्त्व रखता है। १२वीं सदी के अंतिम वर्षों में मुसलमानों के जो आक्रमण हुए उनका प्रभाव यह हुआ कि राजपूत शासक, जो पहिले प्रायः संपूर्ण भारत के स्वामी थे, सिमटते सिमटते केवल राजपूताना की मरुभूमि तथा मध्य-भारत के पहाड़ी तथा जंगली प्रदेशों के स्वामी रह गए। इस प्रकार १३वीं सदी से राजपूताना मुसलमानी राजसत्ता के विकास में बाधक हुआ और इस कारण विशेष महत्त्व प्राप्त करने लगा। प्रायः सभी सशक्त मुसलमान शासकों ने राजपूताने को अपने अधीन करना अपना कर्तव्य समझा, परंतु उनको इस उद्देश्य में कभी भी स्थायी सफलता प्राप्त नहीं हुई। राजपूताने के दो राजवंशों ने, विशेष रूप से, समूचे राजपूताने पर उनका अधिकार होने में लगातार बाधा डाली। वे हैं मेवाड़-उदयपुर और मारवाड़*-जोधपुर। मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ की मार्के की स्थिति के कारण उस पर कई बार आक्रमण हुए। दिल्ली और गुजरात के रास्ते में पड़ने के कारण तथा राजपूताने की रियासतों में प्रायः सर्व-श्रेष्ठ होने के कारण इसको जीतने की इच्छा दिल्ली के सम्राटों के हृदय में होना स्वाभाविक ही थी। मारवाड़ के राठौड़, मेवाड़ के सीसोदियों

* भौगोलिक मारवाड़ प्रदेश में इस समय जोधपुर, बीकानेर तथा किशनगढ़ रियासते सम्मिलित हैं। यहाँ पर मारवाड़-जोधपुर से उस राठौड़ घराने का अर्थ समझना चाहिए जो कन्नौज से आकर मारवाड़ में बसा और जिसके एक नरपति जोधा ने आगे चलकर जोधपुर नगर बसाया जो उस रियासत की राजधानी का और बाद में उसका ही नाम हो गया।

के बाद सर्वप्रसिद्ध रहे हैं। बरन् राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् महाराणा प्रताप के काल तक तो वे उनसे भी बढ़ गए थे।

अस्तु, मारवाड़ के इतिहास का हमारे देश, विशेषतः राज-पूताने, के इतिहास में बड़ा महत्त्व है। रेऊजी ने इस इतिहास को लिखकर भारतीय इतिहास की काफ़ी सेवा की है। उन्होंने इस इतिहास को तैयार करने में तत्कालीन फ़ारसी इतिहासों, ख्यातों, ताम्रपत्रों, शिलालेखों, साधारण पत्रों तथा प्रशस्तियों के अतिरिक्त अर्वाचीन इतिहासों, प्रचलित कथाओं और कहावतों तथा ऐतिहासिक समाचारपत्रों में निकले लेखों और सरकारी रिपोर्टों आदि का यथासाध्य उपयोग किया है। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर दी गई टिप्पणियाँ इसके सहज प्रमाण हैं। उन्होंने कुछ अल्पज्ञात कालों पर प्रकाश डालने का भी सफल प्रयत्न किया है। कुछ विवादास्पद विषयों पर भी उन्होंने अच्छी दृष्टि डाली है। कहीं कहीं पर उन्होंने कुछ रोचक कहानियाँ टिप्पणियों में दे दी हैं जो लगातार हार-जीत के रूखे वर्णन के बीच बीच बहुत ही भली मालूम होती हैं।

किंतु संभवतः कठिनाइयों की विषमता तथा प्रकाशन की शीघ्रता के कारण इस पुस्तक में इतिहास के बहुत से अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक अंगों पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया। यह कहा जा सकता है कि इसमें केवल मारवाड़-जोधपुर के राजाओं के राज-नैतिक जीवन का उल्लेख है—यदि उनकी शासन-प्रणाली को उनके राजनैतिक जीवन का आवश्यक अंग न माना जाय। पिछली सदी के आरंभ में ही इतिहास अपनी संकुचित परिभाषा को बहुत पीछे छोड़ चुका है। आज से १५० वर्ष पहिले ही यह निश्चय हो चुका है कि किसी राज्य के इतिहास में उसके राजाओं के राज्य-काल की घटनाओं, उनके पुत्रों की सूचियों तथा दान दिए हुए गांवों के उल्लेख या बनवाए हुए तालाब-मंदिर आदि की चर्चा के अतिरिक्त उनकी शासन-प्रणाली, प्रजा की आर्थिक दशा, उसका व्यावसायिक जीवन, सामाजिक तथा धार्मिक संगठन और उसके

साहित्य तथा कला का वर्णन अधिक महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान सदी में तो उस पुस्तक को जिसमें देशवासियों के जीवन के पहलुओं पर कुछ प्रकाश न डाला गया हो, इतिहास कहना इतिहास का अपमान करना है। आशा है, पुस्तक के अगले संस्करण में रेऊजी इस ओर ध्यान देंगे।

इस पुस्तक में छोटे छोटे स्थानों का उल्लेख प्रायः सभी स्थानों पर है। यद्यपि कहीं कहीं पर उन स्थानों की दिशा और दूरी की ओर संकेत किया गया है, फिर भी उनकी स्थिति का ठीक ठीक पता चलना कठिन होता है। अतः एक बड़े आकार के मारवाड़ और राजपूताना के नक्शे की बड़ी आवश्यकता है। मारवाड़-नरेशों में से कम से कम कुछ के अधिकृत प्रदेश भी दूसरे नक्शों पर दिखाना आवश्यक है। इनका अभाव पुस्तक की उपयोगिता पर प्रभाव डालता है।

पुस्तक में जो चित्र दिए गए हैं उनके विषय में यदि काल, निर्माता और प्राप्तस्थान का उल्लेख होता तो अच्छा होता।

यत्र तत्र इसमें दरबारी इतिहास के दोष आ गए हैं। मालदेव तथा हुमायूँ का संबंध और जसवंतसिंह तथा दारा का संबंध दिखाने में मारवाड़-नरेशों का पक्ष लिया गया है। रविचंद्र सेन और महाराणा प्रताप की तुलना में भी इसी का आभास मिलता है। मोटा राजा उदयसिंह तथा कल्याणमल आदि के मुगल सम्राटों से विवाह-संबंध भी शायद इसी कारण स्थान नहीं पा सके हैं।

पुस्तक का नाम मारवाड़ का इतिहास होते हुए भी इसमें न तो कहीं यही कहा गया है कि इसमें मारवाड़ एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त है और न बीकानेर तथा किशनगढ़ का इतिहास ही दिया गया है। पुस्तक को पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि मारवाड़ वह लघुतम से लेकर महत्तम प्रदेश है जो किसी समय वर्तमान जाधपुरनरेश के पूर्वपुरुषों के अधिकार में था। इसी कारण संभवतः मल्लिनाथ और जगमाल की रावों में गिनती नहीं की गई।

यद्यपि यह स्पष्ट है कि यह पुस्तक बड़े श्रम और छानबीन का फल है तो भी अपने वर्तमान स्वरूप में यह इस नाम के योग्य नहीं जो इस पर अंकित है। आशा है, अगले संस्करण में यह यथेष्ट पूर्ण बनाई जायगी।

—अवधविहारी पांडेय।

हिल्लोल—लेखक श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'; प्रकाशक शांति-सदन, हिंदूविश्वविद्यालय, काशी; मूल्य १)।

शब्दों में विभिन्न प्रयोगों के हेर-फेर से स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की सहज शक्ति होती है। छायावाद के नाम पर होनेवाली अधिकांश कविताओं में आजकल संघटित पद-समुदाय का यही चमत्कारी उलट-फेर दृष्टिगत होता है। किंतु इस वाच्य-वाचक-रचना-प्रपंच में जहाँ आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति रसमयी अर्थभूमि पर अपनी अभिव्यंजना करे वहीं कवित्व का भाव मानना चाहिए। अनूठा से अनूठा वाग्विकल्प अथवा वक्र अर्थ-विन्यास कवित्व नहीं हो सकता, जब तक वह संवेदनात्मकता से हृदय को स्पर्श न करे। काव्योद्गीतों के इस उत्पादन-प्राचुर्य में प्रस्तुत संग्रह की सच्ची अनुभूतिवाली कुछ रचनाओं के ऊर्ज अंश इसके अपवाद हैं। उनमें कवित्व लाभ हुआ है।

'हिल्लोल' की सुलघु भूमिका आचार्यवर श्री केशवप्रसाद मिश्र ने लिखकर नए कवि के उत्साह-संवर्द्धन के साथ साथ साहित्यिक दृष्टि से पुस्तक का मूल्य भी बढ़ा दिया है।

'सुमन' का यह प्रथम उन्मेष है। रचनाएँ सरल हैं और भाव-पूर्ण भी। अतीत के प्रति इनमें बड़ा आग्रह है। अभिव्यंजना का जहाँ भी दाह-संवलित कसक और व्यथा की अनुभूतियों से तादात्म्य हो सका है, वहाँ रचना में भाव-समर्पकत्व का गुण आ ही गया है। जीवन के प्रकृत क्षेत्र में अंतर्गूढ़ घनी पीड़ाओं का हाहाकार लेकर आनेवाला साहसी काव्यकार जीवन से समझौता करने में भी यत्नवान् है, यही उसकी कृतियों की विशेषता है।

हम अपनी असफलताओं से ही कर लेते अपना परिणय ।

हम दीवानों का क्या परिचय !!

जीवन के प्रति जो दृष्टि है वह भी पूर्णता की ओर प्रेरित करने-
वाली भावना से भरी है—

इसका कहीं नहीं इति अथ है,

जीवन अमर साधना-पथ है ।

इस भाँति विषमतावाही संसार में 'अधीर हृदय' और 'प्राण में
पीर' लेकर आनेवाले का स्वागत होना चाहिए ।

आज के युग में कवि 'दीवाने हैं' कह देने मात्र से वह शब्दार्थ-
शासन-ज्ञान, काव्यशिष्टता की मर्यादा और उसके परंपरागत शील के
तिरस्करण का निर्व्याज पराक्रमी या अधिकारी नहीं हो सकता । 'कुछ
भले बुरे का ज्ञान' भले ही न हो, पर भाषा और प्रयोगों की
संघटना तथा संस्कार का ध्यान न रखना बड़े साहस का काम तो
है ही, साथ ही कवि को प्राप्त अधिकारों का दुरुपयोग भी । वर्ण्य
विषय के अनुरूप भाषा न होने से पद पके हुए चावल में पड़ी
कंकड़ी के सदृश गड़ने लगते हैं । 'वह प्रेम पूरित जाम है', 'युग
युग जोड़ी आबाद रहे' ऐसे प्रयोग हमें तो 'बादशाह दशरथ' और 'बेगम
कौसल्या' से कम कर्णपीड़क नहीं लगते । अपनी भाषा को 'आम
फूहम' बनाने के अभिप्राय से उसमें उर्दू शब्दों का अकारण, यत्र तत्र
अनुप्रवेश कर सुकवि 'सुमन' ने 'रेशम की अँगिया में सूत की बखिया'
सी की है ।

पुस्तक में सुंदरता के साथ साथ कुछ बेढंगे और विलक्षण प्रयोग
भी हैं । 'संपुट भरना', 'गोदी पर', 'आर्द्रित होना' आदि ऐसे ही प्रयोग
हैं । शब्दों के कुछ विकृत, अशोभन प्रयोग भी हुए हैं—जैसे 'यूँ', 'छुपे
हैं', 'रस्ते', 'बयन', 'अंतस्तर', 'आगो' इत्यादि । आशा है भविष्य
में इन पर कवि-कर्तव्य समझकर ध्यान दिया जायगा ।

'हा प्रसाद' और निरालाजी की 'अपना सँवार सितार लो'
वाली कविता के अनुकरण पर 'सुझको न सुख संसार दो' के गीत

३८२

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

सुंदर हैं। इनकी भावनाओं में अन्विति की कमी होने पर भी इनमें आत्म-निर्भरता, आशा और विकास की प्रेरणा का पुट है। यह शुभ लक्षण है।

इस प्रथम उन्मेष से हम 'सुमन' के सुंदर विकास की आशा करते हैं।

—रा० ना० श०।

प्रभुमति के दोहे—लेखक और प्रकाशक श्री प्रभुदयाल अग्रवाल, श्रीकृष्ण व्यापारी पाठशाला, हापुड़, मेरठ; मूल्य १।

लगभग दो सौ पृष्ठों की इस पुस्तक में लेखक ने हिसाब के प्रायः सभी नियमों के लाने का प्रयत्न किया है, जिससे व्यापार में सरलता हो। प्रयत्न श्लाघ्य है; परंतु यदि थोड़ी ही बातों को, जो प्रायः काम में आती हैं, विशेष विस्तार से समझाकर उन पर अधिक उदाहरण दिए गए होते तो पाठक विशेष लाभ उठा सकते थे। बातें बहुत लिखी हैं, पर अभ्यास के साधन कम हैं। अंत में ऐसी प्रश्नावलियाँ होनी चाहिए थीं जिससे विद्यार्थियों को अभ्यास करने का अवसर मिलता। समझाने में भी लेखक महोदय अपने भावों को पूर्णतया स्पष्ट नहीं कर सके हैं। सतौंचा तक पहाड़ा दिया है। उपयोगी तो है, परंतु अभ्यास में कम देखा जाता है। ढौंचा, पौंचा भी आजकल कम ही चालू हैं। बहुत से सिक्के ऐसे दिए हैं, जिनके नाम भी आजकल नहीं सुनने में आते; जैसे अति कच्ची और कठुची दमड़ी। दमड़ी का नाम दुकड़े की जगह रखा गया है। पैसे में आठ दमड़ियाँ होती हैं और दुकड़े चार, पर लेखक ने धेले में दो दमड़ियाँ बताई हैं। इससे पाठक संदेह में पड़ सकते हैं। मौलिक प्रश्न एक प्रकार के एक साथ रखना अच्छा होता है।

पुस्तक से विद्यार्थी कम लाभ उठा सकते हैं, परंतु बड़े लोगों के लिये यह बहुत उपयोगी है। भाषा में उर्दू शब्दों का अधिक

प्रयोग है। पद्य के प्रयोग का प्रयास यथेष्ट सफल नहीं कहा जा सकता।

—जीवनदास।

साहित्य-संदेश का उपन्यास-अंक—अक्तूबर-नवंबर, १९४०; संपादक सर्वश्री गुलाबराय, एम० ए०, महेंद्र और गोपालप्रसाद व्यास; प्रकाशक साहित्य-संदेश कार्यालय, आगरा; मूल्य १।

उपन्यास आज की वस्तु नहीं है। प्राचीन महाकाव्य, नाटक, तथा कथा-आख्यायिका में आधुनिक उपन्यास के तत्त्व वर्तमान हैं। पर उस युग के परवर्ती साहित्यकारों की इस ओर से उदासीनता के कारण हमारे साहित्य की कथा-धारा एक लंबे युग तक अंतर्वाहिनी बनी रही। आधुनिक युग में यद्यपि साहित्यकारों ने नवीन विचारधाराओं और नूतन भावव्यंजनाओं की ओर प्रवृत्त होकर हमारे साहित्य के विविध अंगों को वर्तमान रूप में परिपुष्ट किया है; तथापि हमारे वर्तमान साहित्य का सबसे समृद्ध अंग कथा-प्रबंध ही हो रहा है।

प्रस्तुत उपन्यास-अंक में मुख्यतः आधुनिक उपन्यासों एवं उपन्यास-लेखकों की मीमांसाएँ हैं। प्राचीन कथा-साहित्य एवं भारतेंदु-प्रवर्तित गद्य-साहित्य के प्रथम उत्थान के उपन्यासों के संबंध में भी एक एक लेख हैं। अन्य लेखों में वर्तमान उपन्यास-कारों द्वारा प्रतिपादित मतों का विवेचन, उनके चरित्र-चित्रों का विश्लेषण एवं उनके द्वारा गृहीत समस्याओं का यथोचित निदर्शन हुआ है। अन्य भाषा के उपन्यासों के संबंध में भी उपयोगी लेख हैं। विदेशी भाषाओं में अँगरेजी को छोड़कर हिंदी के उपन्यासों पर सबसे अधिक प्रभाव रूसी उपन्यासों का पड़ा है। यद्यपि यत्र तत्र प्रसंगवश तत्संबंधी कुछ चर्चा हो पड़ी है, तथापि स्वतंत्र सामग्री का अभाव है। अंत में 'हिंदी के प्रमुख उपन्यासकार—परिचय और उनके अपने अनुभव' इस शीर्षक से कुछ उपन्यासकारों के पत्र उद्धृत किए गए हैं। इनमें

से कुछ में इतिवृत्तात्मक सामग्री अधिक है, पर अधिकांश आत्म-व्याख्यात्मक एवं अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी हैं।

कुल मिलाकर प्रस्तुत उपन्यास-ग्रंथ यथार्थतः उपादेय है—‘साहित्य-संदेश’ का यह प्रयत्न श्लाघ्य है, इसके संपादक हमारी बधाई के पात्र हैं।

आकाशवाणी—‘रेडियो संबंधी स्वतंत्र पाक्षिक पत्रिका’, भाग १—अंक १ (१५ नवंबर, १९४०); संपादक श्री जगदंबाप्रसाद मिश्र ‘हितैषी’ और श्री गोपाललाल खन्ना, एम० ए०; आकाशवाणी-कार्यालय, अमीनाबाद, लखनऊ से प्राप्य; मूल्य १।।) वार्षिक अथवा एक अंक का —); छपाई आदि अच्छी।

रेडियो का प्रचार हमारे देश में उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इसके प्रचार में भारत-सरकार का प्रधान उद्देश्य जनता का ज्ञानवर्धन और मनोरंजन है, जिसकी पूर्ति के लिये लोकवाणी को मान्यता देना अनिवार्यतः आवश्यक है। पर या तो सरकार को पता नहीं है कि लोकवाणी का निरादर करके वह जनता में असंतोष और क्षोभ उत्तरोत्तर बढ़ा रही है या सब जानते, समझते हुए भी उसे अपनी वर्तमान नीति में सुधार करना अभीष्ट नहीं है। रेडियो विभाग की इस पक्षपातपूर्ण नीति को दूर कराने और रेडियो-जैसी लोकोपयोगी वस्तु को जनता की इच्छा के अनुरूप संचालित कराने का ध्येय लेकर ‘आकाश-वाणी’ का जन्म हुआ है।

इस अंक में रेडियो संबंधी भिन्न भिन्न विषयों पर कतिपय गंभीर और व्यंग्यात्मक उपयोगी लेख तथा टिप्पणियाँ हैं। उपयुक्त कार्यक्रम के लिये जो प्रोत्साहन एवं अपरिमार्जित रुचि के, अशिष्ट और संस्कृति-विरोधी कार्यक्रम के लिये जो चेतावनी दी गई है उस पर रेडियो-अधिकारियों को समुचित ध्यान देना चाहिए। बिना ऐसा किए उन्हें जनता की सहानुभूति प्राप्त न होगी। अंत में दिल्ली और लखनऊ के स्टेशनों का पाक्षिक कार्यक्रम दे देने से पत्रिका की उपयोगिता और बढ़ गई है। ‘आकाशवाणी’ समय से आई है, हिंदी प्रेमी जनता को चाहिए कि वह इसे उत्साह से अपनाए।

—शं० वा०।

समीक्षार्थ प्राप्त

अनोखी कहानियाँ—लेखक और प्रकाशक श्री मन्मथलाल दम्माणी; कोट गेट, बीकानेर, मूल्य ॥१॥

अपराधी—लेखक श्री पृथ्वीनाथसिंह; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥१॥

अष्टछापपदावली—लेखक श्री सोमनाथ गुप्त; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य २॥

आशावती उपाख्यान—अनु० श्री महेंद्रकुमार सरकार; प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, सैदमिट्टा बाजार, लाहौर; मूल्य ॥१॥

आहुति—लेखक श्री हरिकृष्ण प्रेमी; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥२॥

उरावकरम डंडो—लेखक श्री डब्ल्यू० जी० आर्चर; प्रकाशक पुस्तक भंडार, लहेरियासराय; मूल्य ?

उराव बेजाडंडो—लेखक श्री डब्ल्यू० जी० आर्चर; प्रकाशक पुस्तक भंडार, लहेरियासराय; मूल्य ?

एलबम या शब्दचित्रावली—श्री सत्यजीवन वर्मा 'श्री भारतीय'; प्रकाशक 'लेखक' कार्यालय, शारदा प्रेस, प्रयाग; मूल्य ॥२॥

क० ख० ग०—लेखक श्री विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य १-॥

कबीरदास—लेखक श्री नरोत्तमदास स्वामी; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य १॥

कमला—लेखक श्री उदयशंकर भट्ट; प्रकाशक सूरी ब्रदर्स, गनपत रोड, लाहौर; मूल्य ॥१॥

कुंडलीसंग्रह—लेखक श्री सूर्यनारायण व्यास; प्रकाशक मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन; मूल्य ॥१॥

गुड़गुड़ी—लेखक श्री व्यथितहृदय; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य १॥

३८६

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

चार उपन्यास—अनु० श्री इलाचंद्र जोशी; प्रकाशक रामनारायण लाल, इलाहाबाद; मूल्य ॥१॥

जंगल की कहानियाँ—लेखक श्री व्यथितहृदय; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥२॥

जादू का पिटारा—लेखक श्री विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक हिंदी भवन लाहौर; मूल्य ॥१॥

तुलसीदास—लेखक श्री नरोत्तमदास स्वामी; प्रकाशक हिंदी-भवन, लाहौर; मूल्य ॥१॥

दिव्यजीवन प्रवेशिका—प्रकाशक हिंदी दिव्यजीवन ग्रंथमाला, पो० सिलाव, पटना; मूल्य ?

दुविधा—लेखक श्री पृथ्वीनाथसिंह; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥१॥

द्वार की राज्यक्रांति—लेखक श्री किशोरीदास वाजपेयी; प्रकाशक हिमालय एजेंसी, कनखल; मूल्य ॥२॥

निबंधमंजरी—लेखक श्री मीनाराम रंगा; प्रकाशक श्री मन्मथन-लाल दम्भाणी कोटगेट, बीकानेर; मूल्य १॥

पंखुड़ियाँ—लेखक श्री पृथ्वीनाथ सिंह; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य १॥

प्रजातंत्र—लेखक श्री बा० रा० मोडक, अनु० श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे; प्रकाशक ग्रंथमाला कार्यालय, बाँकीपुर; मूल्य १॥१॥

प्रतापप्रतिज्ञा—लेखक श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद'; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥३॥

प्रतिशोध—लेखक श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य १॥

प्रेमयोग—प्रकाशक हिंदी दिव्य जीवन ग्रंथमाला, पो० सिलाव, पटना; मूल्य ?

फुलवारी—लेखक श्री देवचंद्र विशारद; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य २॥

समीक्षा

३८७

फूलों की डाली—लेखक श्री देवचंद्र विशारद; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥२॥

बाल खिलौना—लेखक श्री विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥१॥

बाल सहाभारत—लेखक श्री विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥२॥

बाल रामायण—लेखक श्री विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥३॥

बुलबुल—लेखक श्री जोतिनप्रसाद; प्रकाशक ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर; मूल्य ॥२॥

बुलबुल—लेखक श्री व्यथितहृदय; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥१॥

भारत की वीर नारियाँ—लेखक श्री व्यथितहृदय; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥१॥

भ्रमरगीत—संपादक श्री दानविहारीलाल शर्मा; प्रकाशक व्रज-साहित्य ग्रंथमाला, वृंदावन; मूल्य ॥२॥

मनोहर कहानियाँ—लेखक और प्रकाशक श्री मकखनलाल दम्माणी; कोटगेट, बीकानेर; मूल्य ॥२॥

मालव का संक्षिप्त राजनीतिक इतिहास—लेखक श्री सूर्यनारायण व्यास; प्रकाशक मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर उज्जैन; मूल्य ॥१॥

मीरापदावली—लेखिका श्री विष्णुकुमारी श्रीवास्तव; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥२॥

युंडा गेना दुरंग—लेखक श्री डब्ल्यू० जी० आर्चर; प्रकाशक पुस्तक भंडार, लहेरियासराय। मूल्य ?

रत्नाबंधन—लेखक श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य ॥२॥

३८८

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

ला डिक्शनरी—संपादक श्री पी० डी० श्रीवास्तव; प्रकाशक शिवदयाल श्रीवास्तव बी० ए०, एल-एल० बी०, पाटंकर बाजार, लश्कर, मोरार; मूल्य ५) ।

लेखनी उठाने के पूर्व या लेखकबंधु—लेखक श्री सत्यजीवन वर्मा 'श्री भारतीय'; प्रकाशक लेखक कार्यालय, शारदा प्रेस, प्रयाग; मूल्य १॥) ।

विचित्र अनुभव अर्थात् सरस कहानियाँ—लेखक श्री सत्यजीवन वर्मा 'श्री भारतीय'; प्रकाशक लेखक कार्यालय, शारदा प्रेस, प्रयाग; मूल्य ॥=) ।

विभूतिमती व्रजभाषा—लेखक श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि-बोध'; प्रकाशक व्रजसाहित्य मंडल, वृंदावन; मूल्य =) ।

विमान—लेखक श्री गिरिधरलाल शर्मा; प्रकाशक ग्रंथमाला कार्यालय, बाँकीपुर; मूल्य १॥) ।

विश्व पर हिंदुत्व का प्रभाव—लेखक श्री विश्वनाथ शास्त्री; प्रकाशक अखिल भारतीय हिंदू महासभा, २ चर्च लेन, कलकत्ता; मूल्य १) ।

शिवकवच—प्रकाशक हिंदी दिव्यजीवन ग्रंथमाला, पो० सिलाव, पटना । मू० ?

शिवसाधना—लेखक श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य १) ।

संकीर्तन महिमा—प्रकाशक हिंदी दिव्यजीवन ग्रंथमाला, पो० सिलाव, पटना । मू० ?

संचित रामायण—संपादक और प्रकाशक श्री राजावहादुर पंचम सिंह, पहाड़गढ़, ग्वालियर । मू० ?

सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य—प्रकाशक हिंदी दिव्यजीवन ग्रंथमाला, पो० सिलाव, पटना । मू० ?

सदाचार : शिष्टाचार—लेखक श्री भाईदयाल जैन; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य १=) ।

साधनमार्ग—लेखक श्री भगवानदास; प्रकाशक हिंदी दिव्यजीवन ग्रंथमाला, पो० सिलाव, पटना । मू० ?

सुकविसमीक्षा—लेखक श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख'; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य २।

सूरदास—लेखक श्री नरोत्तमदास स्वामी; प्रकाशक हिंदी भवन, लाहौर; मूल्य १।

स्वास्थ्यप्रकाश भाग १—लेखक श्री जगेश्वरदयाल वैश्य; प्रकाशक श्री मकखनलाल दस्माणी, कोटगेट, बीकानेर; मूल्य ॥।

स्वास्थ्यप्रकाश भाग २—लेखक श्री जगेश्वरदयाल वैश्य; प्रकाशक श्री मकखनलाल दस्माणी, कोटगेट, बीकानेर; मूल्य १-॥।

स्वास्थ्यप्रकाश भाग ३—लेखक श्री जगेश्वरदयाल वैश्य; प्रकाशक श्री मकखनलाल दस्माणी, कोटगेट, बीकानेर; मूल्य ॥।

स्वास्थ्यप्रकाश भाग ४—लेखक श्री जगेश्वरदयाल वैश्य; प्रकाशक श्री मकखनलाल दस्माणी कोटगेट, बीकानेर; मूल्य ॥॥।

हमारी नाट्यपरंपरा—लेखक श्री दिनेशनारायण उपाध्याय; प्रकाशक रामनारायणलाल बुक्सेलर, प्रयाग; मूल्य १।

विविध

बहुमूल्य प्राचीन ग्रंथ-संपत्ति अमेरिका गई

अमेरिका के लाइब्रेरी आव कांग्रेस (कांग्रेस पुस्तकालय) ने गत वर्ष भारत के प्राचीन ग्रंथों के संग्रह के लिये डा० होरेस आइ० पोलमन को यहाँ भेजा था । कलकत्ता पहुँचकर डा० पोलमन ने एक पत्र-प्रतिनिधि को बताया था कि यहाँ खोज में जितने भी ग्रंथ खरीदे जा सकेंगे, मैं खरीदूँगा और शेष के फोटो लूँगा; धन का कोई प्रश्न मेरे सामने नहीं है । सुतरां संस्कृत, प्राकृत, हिंदी और अन्य देशभाषाओं के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के कई संग्रह वे हस्तगत करने में सफल हुए हैं ।

डा० पोलमन ने सितंबर १९४० के 'साइंस एंड कल्चर' में प्रकाशित 'अमेरिका और भारतीय अध्ययन' शीर्षक अपने लेख में बताया है कि उनके संग्रहों में बहुतेरे ऐसे हस्तलिखित ग्रंथ हैं जो अभी तक किसी ग्रंथ-सूची में उल्लिखित नहीं हैं । उन्होंने कहा है कि इन ग्रंथों की सूची अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी की पत्रिका के एक अतिरिक्त अंक में प्रकाशित होगी । कुछ महत्त्व के ग्रंथ, जिनका उन्होंने उल्लेख किया है, ये हैं: रामगोविंदकृत व्यवस्थासारसंग्रह, गोविंदानंदकृत दायसार, मधुसूदनवाचस्पतिकृत अशौचसंक्षेप, कपालभृत्कृत कृषि-पद्धति, श्रीदत्तोपाध्यायकृत आचारादर्श, रघुनंदनकृत तिथितत्त्व, नारायण-भट्टकृत रुद्रकलशस्तानविधि, महेश्वरतीर्थकृत टीकासहित रामायण और यासशिखा ।

इस सूचना के लिये हम नवंबर १९४० के 'इंडियन पी० ई० एन०' के ऋणी हैं ।

इतनी और प्राचीन ग्रंथ-संपत्ति से हम वंचित हो रहे। अवश्य लाइब्रेरी आव कांग्रेस की कृपा से फोटो द्वारा इसके उपयोग की हम आशा कर सकते हैं। हमारी प्राचीन ग्रंथ-संपत्ति के प्रति ऐसे उत्साह के लिये हमें अमेरिका के उक्त पुस्तकालय को धन्यवाद देना चाहिए—और अपने को ?

पृथ्वीराजरासो संबंधी शोध

पृथ्वीराजरासो संबंधी शोध में एक अर्धशताब्दी बीत गई है। ऐतिहासिक बृहत्काव्य, हिंदी के प्रथम महाकाव्य की मान्यता से पृथ्वीराजरासो अनेक अधिकारी विद्वानों के द्वारा सर्वथा जाली रचना के रूप में अवमानित हुआ है। परंतु इसके संबंध में यथेष्ट शोध नहीं हुआ है, अतः यथार्थ निर्णय नहीं हुआ है। ऐसा परंपरागत काव्य सर्वथा जाली रचना हो, यह असंभाव्य सी बात है।

हाल में इस ग्रंथ के संबंध में दो ऐसे अनुसंधान हुए हैं जो इसके मौलिक स्वरूप के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण विचार उपस्थित करते हैं। पहला अनुसंधान, जो दूसरे का एक प्रकार से प्रेरक हुआ है, मुनि जिनविजय जी द्वारा, प्रायः चार वर्ष पूर्व अपने संपादित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' (सिंधी जैन ग्रंथमाला, पुष्प २) के पृथ्वीराज और जयचंद विषयक प्रबंधों में, चार देश्य प्राकृत भाषा के पद्यों की उपलब्धि है। उक्त संग्रह की प्रस्तावना में इस संबंध में (पृष्ठ ८-१० पर) मुनि जी ने लिखा है :

हम यहाँ पर एक बात पर विद्वानों का लक्ष्य आकर्षित करना चाहते हैं और वह यह है कि इस संग्रहगत पृथ्वीराज और जयचंद विषयक प्रबंधों में हमें यह ज्ञात हो रहा है कि चंदकवि-रचित पृथ्वीराजरासो नामक हिंदी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य के कर्तृत्व और काल के विषय में जो कुछ पुराविद् विद्वानों का यह मत है कि यह ग्रंथ समूचा ही बनावटी है और १७-वीं सदी के आसपास में बना हुआ है, यह मत सर्वथा सत्य नहीं है। इस संग्रह के उक्त प्रकरणों में जो ३-४ प्राकृतभाषावद्य

(८६, ८८, ८९ पर) उद्धृत किए हुए मिलते हैं, उनका पता हमने उक्त रासो* में लगाया है और इन ४ पद्यों में से ३ पद्य यद्यपि विकृत रूप में लेकिन शब्दशः उसमें हमें मिल गए हैं । इससे यह प्रमाणित होता है कि चंदकवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदू-सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था । उसी ने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो पृथ्वीराज-रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

हम यहाँ पर पृथ्वीराजरासो में उपलब्ध विकृत रूपवाले इन तीनों पद्यों को प्रस्तुत संग्रह में प्राप्त मूल रूप के साथ साथ उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को इनकी परिवर्तित भाषा और पाठभिन्नता का प्रत्यक्ष बोध हो सकेगा ।

इसके आगे मुनि जी ने उपर्युक्त पद्य उद्धृत किए हैं, जिन्हें इस ग्रंथ में रायबहादुर श्यामसुंदरदास जी ने 'पृथ्वीराजरासो' शीर्षक अपने लेख में अवतरित किया है ।

पद्यों के बाद मुनिजी ने इस ग्रंथ के शोध के संबंध में जो अपने विचार लिखे हैं उन्हें कुछ संचिप्त रूप में हम यहाँ उद्धृत करते हैं :

हमने इस महाकाव्य ग्रंथ के कुछ प्रकरण, इस दृष्टि से बहुत मनन करके पढ़े तो हमें इसमें कई प्रकार की भाषा और रचनापद्धति का आभास हुआ । भाव और भाषा की दृष्टि से इसमें हमें कई पद्य ऐसे दिखाई दिए जैसे छालू में मक्खन दिखाई पड़ता है । हमें यह भी अनुभव हुआ कि काशी की नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से जो इस ग्रंथ का प्रकाशन हुआ है, वह भाषातत्त्व की दृष्टि से बहुत ही भ्रष्ट है ।

×

×

×

मालूम पड़ता है कि चंद कवि की मूल कृति बहुत ही लोकप्रिय हुई और इसलिये ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों उसमें पीछे से चारण और भाट लोग अनेकानेक नए नए पद्य बनाकर मिलाते गए और उसका कलेवर बढ़ाते गए । कंठानुकंठ प्रचार होते रहने के कारण मूल पद्यों की भाषा में भी बहुत कुछ परिवर्तन

* काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराजरासो ।—सं० ।

विविध

३६३

होता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि आज हमें चंद की उस मूल रचना का अस्तित्व ही विलुप्त सा हो गया मालूम दे रहा है। परंतु, यदि कोई पुरातन-भाषाविद् विचक्षण विद्वान् यथेष्ट साधन-सामग्री के साथ पूरा परिश्रम करे तो इस कुड़े-ककट के बड़े ढेर में से चंदकवि के उन रत्नरूप असली पद्यों को खोजकर निकाल सकता है और इस तरह हिंदी भाषा के नष्ट-भ्रष्ट इस महाकाव्य का प्रामाणिक पाठोद्धार कर सकता है। नागरीप्रचारिणी सभा का कर्तव्य है कि जिस तरह पूना का भांडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट महाभारत की संशोधित आवृत्ति तैयार कर प्रकाशित कर रहा है उसी तरह वह भी हिंदी भाषा के महाभारत समझे जाने-वाले इस पृथ्वीराज रासो की एक संपूर्ण संशोधित आवृत्ति प्रकाशित करने का पुण्य करे।

प्रसंगात् मुनिजी ने नागरीप्रचारिणी सभा के पृथ्वीराजरासो के प्रकाशन और उसके कर्तव्य की ओर जो निर्देश किए हैं उनके संबंध में हमें यह कहना है कि सभा ने विद्वानों के शोधकार्य की सुविधा के विचार से ही अपने तत्कालीन साधनों से इस बृहद् ग्रंथ का प्रकाशन किया था और अब इसकी संशोधित आवृत्ति की आवश्यकता वह समझती है। 'यथेष्ट साधन-सामग्री' के योग से संभव है यह 'पुण्य' कार्य भी उसके द्वारा बन पड़े। अस्तु।

इस ग्रंथ के संबंध में दूसरा अनुसंधान बीकानेर की फोर्ट लाइब्रेरी (राजकीय पुस्तकालय) में इसके एक संस्करण की परख है जिसके संबंध में अपने विमर्श श्री दशरथ शर्मा ने इस पत्रिका के वर्ष ४४, अंक ३, पृष्ठ २७५-२८२ पर, 'राजस्थानी' के भाग ३, अंक ३, पृष्ठ १-१५ पर और 'इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली' के ग्रंथ १६, अंक ४, पृष्ठ ७३८-७४६ पर और श्री अग्रचंद नाहटा ने 'राजस्थानी' भाग ३, अंक २, पृष्ठ ६-३२ पर दिए हैं। उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि रासो का यह संस्करण समय और परिमाण दोनों की दृष्टि से उसके अब तक के उपलब्ध संस्करणों में सबसे प्राचीन और प्रामाणिक है। श्री अग्रचंद नाहटा ने लिखा है :

अभी तक रासो के संबंध में जो कुछ लिखा गया है वह नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रति के आधार पर ही लिखा गया है। भाषा और ऐतिहासिक

बातों का विश्लेषण भी उसी के आधार पर किया गया है और इस बात में उभय पक्ष के विद्वान् सहमत हैं कि वर्तमान में जो रासो नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है उसमें छेपक भाग बहुत अधिक है।

सभा द्वारा प्रकाशित रासो के संस्करण में ६६ समय और लगभग १००००० श्लोक हैं और बीकानेर के उक्त संस्करण में १६ समय और लगभग ४००० श्लोक ही हैं, यद्यपि वह भी छेपकों से रहित नहीं है। अनुसंधान में यह पता लगा है कि इस ग्रंथ की “प्रतियाँ जितनी पुरानी हैं उतनी ही छोटी और जितनी नई प्रायः उतनी ही बड़ी हैं। इससे स्पष्ट है कि रासो आरंभ में दीर्घकाय ग्रंथ नहीं था।” और विशेष महत्त्वपूर्ण बात, जिसे श्री दशरथ शर्मा ने अपने लेखों में प्रतिपादित किया है, यह है कि जिन आख्यानों के कारण पृथ्वीराजरासो को कविराजा श्यामलदास, डा० बूलर और डा० गौ० ही० ओझा ने अनैतिहासिक और जाली माना है उनका इस बीकानेरी संस्करण में अभाव है। इससे यह भी प्रतीत हुआ है कि इस ग्रंथ का कोई संस्करण जितना ही प्राचीन है उतना ही ऐतिहासिक दोषों से रहित है। अपने पिछले दो लेखों में श्री दशरथ शर्मा ने १६वीं शती (ई०) के संस्कृत महाकाव्य सुर्जनचरित (?) और प्रसिद्ध फारसी प्रबंध आईन-ए-अकबरी में उपलब्ध पृथ्वीराज संबंधी वर्णनों से, जिनमें बंदी चंद का स्पष्ट उल्लेख मिला है, प्रमाणित किया है कि पृथ्वीराजरासो उस काल में भी प्राचीन और ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रंथ माना जाता था; अतः इसके प्राचीन संस्करणों का निर्माणकाल १६वीं शती से अवश्य ही बहुत पूर्व होगा और उनका “स्वरूप प्रायः ऐसा ही होगा जैसा कि बीकानेरवाले संचिप्त संस्करण में मिलता है।”

उपयुक्त दोनों अनुसंधानों के समन्वय से पृथ्वीराजरासो के मौलिक स्वरूप के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण विचार उपस्थित होता है। श्री शर्मा ने बताया है कि ‘पुरातन प्रबंध संग्रह’ में उद्धृत पद्य “किसी न किसी रूप में रासो के प्रायः सभी संस्करणों में मिलते हैं।” उक्त

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ४५—अंक ४

[नवीन संस्करण]

माघ १९६७

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी-ग्रंथों की खोज का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण

(सन् १९३५-३७ ई०)

[लेखक—डाक्टर पीतांबरदत्त वड़्गवाल, एम० ए०, एल्-एल० बी०, डी० लिट्]

इस रिपोर्ट की कार्यावधि में खोज का कार्य मैनपुरी, इटावा, और मथुरा जिलों में हुआ। पं० बाबूराम बित्थरिया पहले मैनपुरी में खोज का कार्य करते रहे, और वहाँ का कार्य समाप्त हो जाने पर इटावा जिले में कार्य करने के लिये भेज दिए गए। इस वर्ष हमें पंडित लक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी की मृत्यु के कारण खोज-कार्य में बड़ी चति उठानी पड़ी। पं० लक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी एक उत्साही, होनहार और परिश्रमी कार्यकर्ता थे। वे मथुरा जिले में अन्वेषण का कार्य कर रहे थे। १ जुलाई सन् १९३६ को उनकी मृत्यु हुई। उनके स्थान पर पंडित दौलतराम जुयाल नियुक्त किए गए।

इस अवधि में १०६३ हस्तलेखों के विवरण लिए गए। इनमें से ४६ ग्रंथों के विवरण पं० त्रिभुवनप्रसाद सहायक अध्यापक मिडिल स्कूल तिलोई जिला रायबरेली से प्राप्त हुए। शेष कार्य तीन वर्षों में इस प्रकार विभक्त है—

३१४

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

सन् ईसवी

हस्तलिखित ग्रंथों की संख्या
जिनके विवरण लिए गए।

१८३५	...	...	...	३६८
१८३६	...	...	...	३०८
१८३७	...	...	...	३३८

२८१ ग्रंथकारों के बनाए हुए ५१६ ग्रंथों की ६८२ प्रतियों की सूचनाएँ ली गई हैं। इसके अतिरिक्त ३७१ ग्रंथों के रचयिता अज्ञात हैं। १०७ ग्रंथकारों के रचे हुए २११ ग्रंथ खोज में बिलकुल नवीन हैं। इनमें ६० ऐसे नवीन ग्रंथ सम्मिलित हैं जिनके रचयिता तो ज्ञात थे किंतु उनके इन ग्रंथों का पता न था।

नीचे दी हुई सारिणी द्वारा ग्रंथों और उनके रचयिताओं का शताब्दिक्रम दिखाया जाता है।

शताब्दि	१४वीं	१५वीं	१६वीं	१७वीं	१८वीं	१९वीं	अज्ञात एवं संदिग्ध	योग
ग्रंथकार	१	३	३१	४६	७४	५५	७१	२८१
ग्रंथ	२	५०	१३३	६६	१७५	११०	४६७	१०६३

ग्रंथों का विषयानुसार विभाग नीचे की सारिणी में दिया जाता है—

१—धार्मिक	...	१५८	६—दार्शनिक	...	८१
२—भक्ति तथा स्तोत्र	...	१२०	७—ज्योतिष	...	६३
३—कथा-कहानी	...	१००	८—पौराणिक	...	५०
४—शृंगारिक	...	८४	९—काव्य	...	३६
५—संगीत	...	८५	१०—उपदेश	...	३८

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३१५

११—वैद्यक	...	३८	२२—कौतुक	...	४
१२—लीलाविहार	...	२६	२३—नाटक	...	४
१३—रमल और शकुन	...	२६	२४—गणित	...	३
१४—अलंकार	...	२६	२५—रत्नपरीक्षा	...	२
१५—तंत्र-मंत्र	...	२१	२६—बागबानी	...	२
१६—राजनीति	...	१४	२७—सामुद्रिक	...	२
१७—पिंगल	...	११	२८—शालिहोत्र	...	१
१८—कोश	...	११	२९—रसायनशास्त्र	...	१
१९—स्वरोदय	...	८	३०—वंशावली	...	१
२०—जीवनी	...	८	३१—लोकोक्ति	...	१
२१—कोकशास्त्र	...	४	३२—विविध	...	२१

नवीन लेखकों में से आलम (चाँदसुत), गंगाराम पुरोहित 'गंग', जीमन महाराज की माँ, नवीन कवि और लालजी रंगखान मुख्य हैं।

आलम (चाँदसुत) का रचा हुआ "ग्रंथसंजीवन" नामक गद्य-पद्य-मिश्रित ग्रंथ प्रस्तुत खोज में नवीन मिला है। यह वैद्यक का ग्रंथ है। पहले नाड़ीपरीक्षा का विषय दिया गया है। फिर औषधियाँ बताई गई हैं। औषधियाँ शिर, नेत्र, कर्ण, दंत आदि अंगों के रोगों के क्रम से लिखी गई हैं। यह किसी फारसी ग्रंथ का अनुवाद है, जैसा नीचे दिए हुए उद्धरण से ज्ञात होता है—

वेद ग्रंथ हो फारसी, समझि रच्यौ भास्तान (भाषान)।

सहज अरथ परकट करौ, औषधि रोग समान॥

ग्रंथकार ने भाषा में इसका अनुवाद करना उचित समझा; क्योंकि मुसलमान होकर भी उसने यह समझ लिया था कि जन-साधारण के लाभ की दृष्टि से भाषा में ही लिखे जाने पर उसका प्रचार हो सकेगा। उसने जायसी आदि कुछ मुसलमान कवियों की भाँति हिंदी भाषा में थ लिखते हुए भी अपने मजहब की ओर ध्यान देकर

नबी आदि की वंदना नहीं की, वरन् संगलाचरण में बड़े आदर के साथ हिंदू देवी-देवताओं की स्तुति की है—

सिव सुत पद प्रनाम सदा विधि सिद्धि सरसुति मति देहु ।

कुमति विनासहु सुमति मोहि देहु मंगल मुदित करेहु ॥

ग्रंथ बहुत ही अशुद्ध लिखा है ।

विषय और भाषा के विचार से यह लेखक अपने नाम के अन्य कवियों से बिलकुल भिन्न जान पड़ता है । इस ग्रंथ में इसने अपने संबंध में केवल एक दोहा लिखा है—

ग्रंथ संजीवन नाम धरि, देषहु ग्रंथ प्रकास ।

सेहद (?) चाँदसुत आलम भाषा कियो निवास ॥

संभवतः सेहद सैयद का बिगड़ा हुआ रूप है । इससे केवल यह ज्ञात हुआ कि ये किसी सैयद चाँद के पुत्र थे । इस ग्रंथ के अंत में इन्होंने कालिदास कवि का रचा हुआ निम्नलिखित छप्पय दिया है । ज्ञात नहीं यह कालिदास कौन है । यदि यह छप्पय 'हजारा' के रचयिता कालिदास का है तो आलम का रचनाकाल कालिदास के रचनाकाल संवत् १७४६ वि० (सन् १६८२ ई०) के बाद होना चाहिए ।

छप्पय

बालापन दस वर्ष बीस लौं बढ़त गनीजै ।

छवी सौभा ~~है~~ तीस, बुद्धि चालीस लहीजै ॥

सुन्व दिढ़ वर्ष पचास साठि पर नैन जोति कमि ।

सत्तरि पै षसै काम असी पर लाल जात रमि ॥

बुद्धिनास नब्बे भए सतवीसे सवते रहित ।

जेदावस्था नरन की कालिदास ऐसैं कहित ॥

इनके गद्य का कुछ नमूना यहाँ दिया जाता है—

“भाड़ की दारू-आँत को जोर करै ॥ गरी उरलौ होइ ॥ आदौ टं-३॥ त्रिफला टंक १ चीनी षांड टंक ५ इकट्ठी करि फंकी कीजै ॥

तातै पानी सों लीजै ॥ सूषी मकड़ी पालै सेर ४॥ हरड़े सेर ५ दाष सेर ५।
ये सब इकट्ठी करि औटाए पानी नितारि लीजै ॥ तातौ सो पीजै ॥ झाड़
लागै सुषीम बहौत फायदौ थे करै” ॥

गंगाराम पुरोहित 'गंग' कृत 'हरिभक्तिप्रकाश' नामक एक
बृहत् ग्रंथ इस त्रिवर्षी में मिला है। 'गंग' जाति के जैमिनि गोत्रीय
सनाढ्य ब्राह्मण थे, और मथुरा से पश्चिम की ओर ५० कोस दूर
करेली नदी के तट पर लिवाली ग्राम इनका निवासस्थान था। यह
प्रदेश पंचवार कहलाता है। नीचे लिखे पद्य में इन्होंने अपना
चरित्र दिया है—

मथुरा ते पश्चिम दिसा वनत कोस पचास ।
तहाँ पुनीत पंचवार धर विप्रन को वरवास ॥
श्रीपति जू श्रीजुत सदा वसत लसत तिहि ग्राम ।
याही ते सबही कहत प्रगट लिवाली नाम ॥
नदी करेली को जहाँ सुंदर सुखद प्रवाह ।
मजन करि पातक कटत देषत बढ़त उछाह ॥
द्विज सनाढ मोचन भयो, हरिदासन को दास ।
जैमुनि गोत्र सु कहतु तिहि किय हरिभक्तिप्रकास ॥

ग्रंथ के रचनाकाल का पता निम्नलिखित दोहे से चलता है—

हरिप्रबोधिनी को प्रगट भयो हरिभक्तिप्रकास ।

सत्रह सै निन्यानचै गुरु दिन कार्तिक मास ॥

इससे प्रकट होता है कि उक्त ग्रंथ संवत् १७६६ वि० (१७४२
ई०) के कार्तिक मास की हरिबोधिनी (एकादशी) गुरुवार को रचा
गया था। ग्रंथ के अंत में लिखा है—“ग्रंथकर्त्ता प्रोहित गंगाराम जी
तस्य पुत्र रामकृष्ण जी तस्य पुत्र लिपिकर श्रीराम सहर दुर्गमध्य गृंथ
समाप्तः लिषायतं महाराजि पुंडरीक जी श्रीजगन्नाथ जी सुभमस्तु श्रीरस्तु
संवत् १८४७ वैसाख शुक्ल १० सनि वासुरे श्री किसोरीरमरण लेखक-
पाठकयो शुभं भूयात् ॥” इससे प्रकट होता है कि ग्रंथकार के पौत्र
तथा रामकृष्ण के पुत्र श्रीराम ने सहर दुर्ग में श्री पुंडरीक जी श्रीजगन्नाथ

जी के लिये संवत् १८४७ वि० में प्रस्तुत प्रतिलिपि की। आजकल के मध्यप्रांत में एक नगर है जो अँगरेजी में Drug लिखा जाता है। संभवतः यही दुर्ग नगर है जहाँ यह प्रतिलिपि हुई है। ग्रंथ के रचना-काल और इस प्रतिलिपि के काल में ४८ वर्ष का अंतर है जो दो पीढ़ियों के लिये ठीक है। इस ग्रंथ में आध्यात्मिक ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। कथाप्रसंगप्रणाली से तथा दृष्टान्तों और उदाहरणों द्वारा इस छिष्ट विषय को रोचकता से समझाया है। ग्रंथ १६ कलाओं में विभक्त है। दशावतार-वर्णनोपरांत कथा इस प्रकार आरंभ हुई है—

हिमालय के दक्षिण प्रदेश की सुरम्य भूमि का अधिपति कोई जीवसेन राजा था। सुमति उसकी पटरानी थी। उसके पुत्र मनसेन का पाणिग्रहण संकल्पा और विकल्पा नाम की दो रूपसंपन्ना, सद्गुणशीला युवतियों के साथ हुआ था। इन सब का पारस्परिक प्रेम अप्रतिम था। एक दिन उक्त राजा ने शिकार खेलने के विचार से अपने साथियों समेत किसी वन में पहुँचकर एक हिरन का पीछा किया। हिरन उसे बहुत दूर एक भयानक वन में ले गया। उसके सब साथी बिछुड़ गए। आगे बढ़कर उसको त्रिष्णुशर्मा नामक एक ऋषि का आश्रम मिला। वहाँ पहुँचकर उसने ऋषि से धर्मोपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। ऋषि ने उसे आत्मज्ञान सुनाना आरंभ किया, कर्म और भक्ति का भेद बतलाया, भक्ति और ज्ञान का अंतर समझाया। षट्दर्शन और बौद्ध, जैन तथा नास्तिक आदि मतों की एकता बताई। ईश्वर और जीव पर भिन्न भिन्न विचार प्रकट किए। तत्त्वादिनिरूपण के अनंतर मोह को तिरोहित कर ज्ञान-चक्षुद्वारा निज स्वरूप जानने का विधान बताया। अंत में वृंदावन का वर्णन किया। कृष्ण की बाललीला की बातें भी सुनाई तथा विशुद्ध भक्ति का प्राधान्य स्थापित किया। इस उपदेश से राजा अत्यंत चमत्कृत हुआ और आनंदपूर्वक अपनी राजधानी को लौटा। घर आकर उसने यही उपदेश अपनी स्त्रियों तथा माता-पिता को भी सुनाया जिससे सबको आत्मज्ञान द्वारा शांति प्राप्त हुई। यही ग्रंथ का संक्षिप्त सार है।

यह ग्रंथ एक प्रकार से भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचार-वली का विश्वकोष है। नीचे ग्रंथकार की कविता के कुछ नमूने दिए जाते हैं—

दोहा

कला दूसरी में बरनी, नृप को सहित समाज ।
मृगया हित धन बन गयो, कुंवर मिले रिषिराज ॥१॥

चौपाई

काया नगरी परमसुहाई । ताकी छवि कछु बरनि न जाई ॥
हिमगिरि के दक्षिण दिशि माहीं । करम बसात विरंचि बसाहीं ॥२॥
बसतु वरण विप्रादिक चारी । सकल देवता से नरनारी ॥
सब विधि करि नगरी अस सुंदर । जिहि लषि लाजत पुरी पुरंदर ॥३॥

× × × ×
सुमति नाम जाकी पटरानी । अति सुंदर सु परै न बषानी ॥
भयो मनसेन पुत्र इक जाकौ । अति अद्भुत प्रिय दरसन ताकौ ॥४॥

× × × ×
ब्याहुत भयो ताहि द्वै नारी । सुरकन्या इक नागकुमारी ॥
× × × ×
तिनके संग रमत भयो जहाँ । नदी पुलिन वन उपवन तहाँ ॥
अस आसक्त भयो तिनि माहीं । अहो और कछु जानत नाही ॥५॥
× × × ×

नरगजराज जग कानन गहतु तामैं,

अतिसै अगाध सरवर सोइ गेह है ।

कंचन किलोल काम कथन कमल फूल,

फूले ही रहत कोच कामिनि सनेह है ॥

कपट सिवाल जाल पूरि परिवार ग्राह,

तृष्णा ही तरंग सुंग तरल अछेह है ।

विषय तृषित होइ बूढ़ि के मगन भये,

तासौं तिन काढ़न कौ 'गंग' गुरु मेह है ॥

जीमन महाराज की माँ एक वैष्णव कवयित्री थीं। गोकुल के बालकृष्ण-मंदिर के गुसाइयों के वंश में एक जीमनजी महाराज हुए। अनुसंधान से पता चला है कि उनका शरीरपात हुए ४० वर्ष के लगभग हुए होंगे। उन्हीं की माता का रचा हुआ 'वनयात्रा' नामक ग्रंथ इस खोज में मिला है। इसमें रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिया है। इनकी भाषा में गुजराती का पुट स्पष्ट दिखाई देता है। ग्रंथ खोज में नवीन है। इसमें ब्रज के भिन्न भिन्न स्थानों, गोकुल, मथुरा, गोवर्द्धन, कामवन, बरसाना, नंदगाँव, मांठ और वृंदावन आदि की महिमा और पवित्रता का वर्णन किया गया है। इनका जीवनवृत्त तथा समय आदि कुछ भी ज्ञात न हो सका। नीचे इनकी कविताओं से कुछ उद्धरण दिए जाते हैं—

प्रथम श्री वल्लभ प्रभुजी ने जागु रे। श्रीगुरु देवता चरण चित्त आगु रे ॥
 ब्रज भोमिना चरी वखाण। चालो वन जात्रा नो सुख लीजे रे ॥
 श्री गुसाईं जी किधों विचार रे। वनयात्रा करवी निरधार रे ॥
 छे ब्रज धामनि लीला अपार। श्री विठ्ठल प्रभु परम दयाल रे ॥
 सयन आरती करी तत्काल रे। साथे लीधों श्री वल्लभ लाल ॥
 संवत सोलहे सैं नी साल रे। भांदरवा वदि द्वादसी सार रे ॥
 वालो उतरया श्री यमुना पार रे। ॥

× × × ×

हाथ जोर श्री मथुरा जी मां किरियारे। बहु आनंद रमा भरिया रे ॥
 हवे कारज सर्वे सरियाँ। जे कोई निसदिन मुख थी गाए रे ॥
 वनयात्रा नो फल तेने थाए रे ॥

ते श्री महाप्रभुजी ने सुहाए। सदा मन श्रीगोकुल मां रहिए रे ॥
 श्री महाप्रभु जी ना गुण नित गैए रे।

श्री विठ्ठलनाथ चरण चित्त लैये। श्रीवल्लभ श्री विठ्ठल प्रभु पूरी आस रे ॥
 राख्या चरण कमल रों पास रे। दास मांगेछे श्री गोकुल वास रे ॥
 चलो वनयात्रा नो सुख लीजे रे ॥

नवीन कवि एक दूसरे नवीन कवि से, जो जोधपुर-नरेश जसवंतसिंह (राज्यकाल १६३५ ई०-१६७८ ई० तक) के आश्रित और नेह-निधान के रचयिता (सन् १६७३ ई० के लगभग वर्तमान) थे, सर्वथा भिन्न हैं। इनका एक ग्रंथ 'सुधासागर' वा 'सुधारस' नाम का मिला है, जिसकी दो प्रतियों के विवरण लिए गए हैं। इसका रचनाकाल विक्रम संवत् १८६५=१८३८ ई० है और लिपिकाल प्रथम प्रति में संवत् १८१० वि०=१८५३ ई० दिया है तथा दूसरी प्रति में, जो अपूर्ण है, सं० १८६६ वि०=१८३८ ई०। लेखक का असली नाम गोपाल सिंह था। ये जाति के कायस्थ और जयपुर के ईश कवि के शिष्य थे—

श्री गुरु ईश प्रवीन कृपा करि दीन को छाप नवीन की दीनी

गुरु की आज्ञा से ही इन्होंने अपना उपनाम 'नवीन' रखा था। ये नाभा राज्य के मालवेन्द्र महाराज जसवंतसिंह तथा उनके पुत्र देवेन्द्र के आश्रित थे और कुछ दिन तक ग्वालियर में भी रहे थे। इनका 'सुधासागर' बृहद् ग्रंथ एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृति है, जिसमें शृंगार, व्रजरसरीति, रामसमाज वर्णन, नीति और भक्ति, दानलीला (इस लीला में अनेक कवियों के नाम श्लिष्ट पदों से व्यक्त किए गए हैं), गोपियों और कृष्ण के प्रश्नोत्तर, विविध जानवरों तथा पक्षियों की लड़ाइयों का वर्णन और नवरस आदि अनेक विषयों पर की गई रचनाओं का संग्रह है। विवरणकर्त्ता के कहने के अनुसार 'गोपियों और कृष्ण के प्रश्नोत्तर' में नवीन की ही रचना है। इसमें २६८ दोहे, २२६५ सवैये तथा कवित्त, ३५ छप्पय, ३ कुंडलियाँ, १० बरवै, और ४ चौपाइयाँ हैं और कुल २५७ कवियों की कविताएँ हैं। ग्रंथ-निर्माणकाल का दोहा यह है—

प्रभु सिधि कवि रस तत्त्व गिन, संवत् सर अवरेषि।

अर्जुन सुक्ला पंचमी, सोम सुधासर लेषि ॥

इससे ग्रंथ का निर्माणकाल फाल्गुन शुक्ला पंचमी चंद्रवार संवत् १८६५ वि० = १८३८ ई० निकलता है। नीचे इस ग्रंथ में से उदाहरण के लिये कुछ छंद दिए जाते हैं।

मंगलाचरण

दाहा

जुगल चरन वंदन करौं, सब देवन समुदाय ।
ज्यो हाथी के खोज में सब को षोज समाय ॥
प्रेम मगन विहरै विपन राधा नंदकिसोर ।
दोऊन के मुषचंद्र के दोऊन नैन चकोर ॥

—नवीन

और खेल खेले सो तो खेलिहैं बबा की सौह,
कहाँ लौं सखीन उपहासन कैं पेलौंगी ।
कौतिक नवीन बीन लावै तू सुजान नित,
मसके भुजान कंध सोन अब भेलौंगी ॥
छुतियाँ भुवावै पीठ ठोड़ी दे गुदी में नीठ,
छोड़न कहत ढीठ कैसे पर हेलौंगी ।
जाँघन में दैकैं कटि भीचनौ बद्यौ न दैया,
तो संग कन्हैया अँखमीचनौ न खेलौंगी ॥

× × × ×

स्याम की प्रभासिनी तू काम की अभ्रासिनी तू
नेह रंग चासिनी तू आनंद विकासिनी ॥
कोटि अघनासिनी तू रस की निवासिनी तू
मौज की मवासिनी तू केलिकलहासिनी ॥
जमुना अपार जस पुंजन नवीन नित
कुंजन के कंज तट सुमन सुवासिनी ॥
सबसुषरासिनी तू प्रेम की प्रकासिनी तू
पासनी प्रिया की वृंदाविपिनविलासिनी ॥

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३२३

मंगल उमंग ब्रजभूमि श्रीवृंदावन मंगल धूम पौर पौरन छई रहै ।
 ब्रज को निकुंजन अलीन पुंज गुंजन नवीन नित मंगल की रचना भई रहै ।
 मंगल रसिकजन मंडल सखीनहू में यमुना किनारे धुनि मंगल नई रहै ।
 मोहन मुकुट मोद मंगल सदाई माँग ललित लड़तीजू की मंगल मई रहै ॥

लालजी रंगखान नाम के एक नवीन मुसलमान कवि का पता इस त्रिवर्षी में चला है, जिसके बनाए हुए एक अपूर्ण नाम के ग्रंथ 'सुधा०' के विवरण लिए गए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ग्रंथ के प्रारंभ के पत्रों के लुप्त हो जाने के कारण विवरणकार को ग्रंथ का पूरा नाम मालूम न हो सका इसलिये पत्रों के सिरों पर ग्रंथ का जो आधा नाम लिखा रहता है वही दे दिया है।

इस कवि ने जयपुरनरेश सवाई महाराजा महेंद्रप्रतापसिंह को अपना आश्रयदाता बताया है, जैसा कि नीचे के उद्धरण से स्पष्ट है—

महेंद्र प्रतापसिंह कहै रंगखान ऐसे
 नीति रीति रावरी सी आप में वषाने हैं ।

× × × ×

कूरम सवाई माधोसिंह के प्रतापसिंह
 अति ही प्रवीनों पाचों भाव ही उमंग है ॥

उक्त महाराज बड़े साहित्यानुरागी थे। उनके आश्रय में अंतराय, पद्माकर और रामनारायण (रसराम) नाम के कवि रहते थे। वे स्वयं भी एक अच्छे कवि थे। ब्रजनिधि-ग्रंथावली के अनुसार उनका जन्मकाल पौष वदि दोज संभवत् १८२१ वि० = १७६४ ई० है। वे पंद्रह वर्ष की अवस्था (संभवतः १८३६ वि० = १७७९ ई०) में राजगढ़ी पर बैठे थे और संवत् १८६० वि० = १८०३ ई० में परलोकवासी हुए।

ग्रंथ के अंत में काल-संबंधी एक दोहा दिया है जो इस प्रकार है—

संवत् एकै आठ सत चौके बादी जानि ।

मास असाढ़ जु देजे वदि वासर रवि पहिचानि ॥

यदि बादी का अर्थ वाद कर देना याने निकाल देना लिया जाय तो समय संवत् १८००-४ = १७६६ वि० = १७३६ ई० निकलता है; और यदि सत को सात और चौके को चार मानें तो संवत् १८७४ वि० = १८१७ ई० होता है। किंतु ये दोनों ही संवत् ग्रंथकार के आश्रयदाता के जीवनकाल से मेल नहीं खाते। अतएव इनमें से कोई भी रचनाकाल नहीं माना जा सकता। हाँ, केवल सं० १८७४ वि० लिपिकाल हो सकता है, किंतु विवरण की प्रारंभिक खानापुगी करते हुए विवरणकार ने लिपिकाल संवत् १८४७ वि० दिया है। यह किस आधार पर दिया है, कुछ मालूम नहीं होता। अतएव लिपि-काल का विषय भी संदिग्ध ही रह जाता है।

लेखक ने एक दोहा अपने विषय में भी लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि इनका वास्तविक नाम लालजी था, और ये ललन भी कहलाते थे। मुसलमान होने की सूचना देने के लिये इन्होंने अपने नाम के आगे 'रंगखान' जोड़ा था—

असल नाम है लालजी ललन अरुन पुनि येहु।

मुसलमान के जानिबे रंगखान कहि देहु॥

नीचे उनकी कविता के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

छाप छित राषी जित तित कौं कदंबन कै, कलित कालिंदी कूल फल फूल आम हैं।
पुंज गुंज भौर भौर सौरभ समीर सीरी, रंगखान सुष के स्वरूप रूप धाम है॥
तरुन तपन तन तेरो सुकुमार अति, घरीक विरमिकें निवारिए जू धाम है।
लसत ललाम छाम परम आराम कै यो, विधना अराम रच्यौ मानौ काम धाम है॥

x

x

x

x

सावन के आवन वसावन विरह व्याधि, अति ही रिसावन हूँ पंचवान विरचें।
मेज्यो ना सँदेस इत उत के अँदेस यह, कहावे हमेस परदेस सबसे थिरचें॥
रंगखान कुंजन में केकी कूक हूक लूक, केयल कुहूक करै करेजे की किरचें।
दादुर दरेरन दबावै देह दामिनि ये, पपीहा पी पुकारे जी जारे लोन मिरचें॥

x

x

x

x

सुजस कै आगे चंद कालमा तैं जानियत, तेज आगे भासकर सांभ पहिचानिए ।
 सिधुरन आगे सैल अचल ही ते जानियत, हय आगे पौन परसे ते उर मानिए ॥
 कर आगे सुर तर जड़ ही जानियत, वैन आगे सुधापान कीये चित आनिए ।
 भूपन के भूप हो अनूप परताप रूप, रंगपान रावरे यौ वरन वषानिए ॥

ज्ञात लेखकों में से जिनके नए ग्रंथ प्रकाश में आए हैं, अलबेली अली, आलम, गंगाबाई या विट्ठल-गिरधरन, दास, परशुराम, बनारसी मुनिमानजी और हजारीदास मुख्य हैं ।

अलबेली अली रचित तीन ग्रंथों, 'अलबेली अली ग्रंथावली' 'गुसाईं जी का संगल' और 'विनय कुंडलिया' के विवरण लिए गए हैं । पहले में 'प्रियाजी को संगल', 'राधा अष्टक' और 'माँझ' नाम के तीन छोटे छोटे ग्रंथ संगृहीत हैं जिनमें राधाजी के स्वरूप-शृंगार और स्तवन संबंधी गीतों का चयन है । दूसरे में ग्रंथकार ने अपने गुरु वंशीअली के संबंध के प्रेम तथा शृंगारपूर्ण बधाई के गीतों का संग्रह किया है । और तीसरे में युगल मूर्ति का ध्यान तथा प्रार्थना है । अंतिम ग्रंथ इनका ही रचा हुआ है, इसमें संदेह है । कई कुंडलियों में इनके नाम की छाप देखकर ही अन्वेषक ने उसे इनका रचा हुआ मान लिया है । साथ ही ऐसा मानने के विरोध में कोई प्रमाण भी नहीं है ।

विनोदकारों ने लिखा है—“इनकी कविता भक्तमाल में है, और ३०० पद गोविंद गिल्लाभाई के पुस्तकालय में हैं । रसमंजरी में भी इनके कवित्त हैं ।” (दे० मि० वि० नं० १६५) । परंतु अब तक इनका स्वतंत्र ग्रंथ न तो शोध ही में मिला था और न हिंदी-साहित्य के किसी इतिहास-ग्रंथ में ही ऐसे किसी ग्रंथ का उल्लेख हुआ है । इन ग्रंथों में रचना-काल और लिपिकाल नहीं दिया गया है । परंतु इनके गुरु वंशीअली का रचनाकाल सन् १७२३ ई० के लगभग माना गया है (दे० खो० रिपोर्ट १६१२-१४ ई० सं० १६ और मिश्रबन्धुविनोद सं० ६८८) । संभवतः यही समय इनकी रचना का भी होगा । ये कवि स्त्री थे या पुरुष ? यह निश्चयपूर्वक कहना तो कठिन है, परंतु रचना

को देखते हुए इनके सखी संप्रदाय के पुरुष कवि होने की ही संभावना होती है। ऐसा भी जान पड़ता है कि अलबेली अली शिष्य-परंपरा में बहुत पीछे न होकर स्वयं वंशीअली से ही दीक्षित उनके समकालीन थे। ये स्वयं लिखते हैं—

जब ते वंशीअलि पद पाए,
श्री वृंदावन कुंज केलि कल लूटत सुख मनभाए ।
रूप सुधा मादिक पद पीवे डोलत घूम घुमाए ॥
अलबेली अलि सबते निज कर स्यामाजू अपनाए ॥

अर्थात्—जब से मैंने वंशीअली के चरण प्राप्त किए (उनका शिष्य हुआ) तभी से मुझको वृंदावन के कुंजों में कल-केलि लूटने का मिली, आदि ।

इनकी कविता अत्यंत सरस एवं भावपूर्ण है। यहाँ नमूने के लिये कुछ उद्धरण दिए जाते हैं—

नेह सनेह सनी अंगीया रँग या सारी मन भावै ।
सखी जानि के अपनी हमकौ वह अंतरौटा पहिरावै ॥
नरम सु जाको गरी मानै हम चित मोद बढ़ावै ।
जय श्री प्रिय प्रेम परिपूरन लोकहि मनहिं बहावै ॥
बाल खुलै पर सूहा पैटा तूरा अजब सुहावै ।
डोरी लगे दूपड़े की लपटन लटकनि मन भावै ॥
मिहि डोरी सो ठुमकी दे दे अली गुड़ी उड़ावै ।
जै श्री वंशीअली खैचन हूँ लाल मनहिं खैचन आवै ॥

—ग्रंथावली से ।

श्री वंशीअलि प्रान हमारे ।

हृदयकमल सम्पुट कर राखूँ, अखियन के वर तारे ॥
चरन-सरोज सुगति मति मेरी निरधन अनुसारे ।
अलबेलो बलि अलि मन मधुकर हूँ पीवत रस सुख सारे ॥

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण

३२७

श्रीवंशीअलि के बलि जाऊँ ।

जाकी चरन सरन कृपा ते श्री वृंदावनधन पाऊँ ॥

नव नागरि अलिकुल चूड़ामनि रहसि दुलराऊँ ॥

अलबेली अलि हिय कौ गहनो प्रेम जराइ जराऊँ ॥

जय जय श्री वंशीअलि गुन गावै ।

श्री वृंदावन अचल बसे दिन श्रीराधा पन पावै ॥

नवल कुँवरि नव लाड़ गहेली नव नव भौंति लड़ावै ।

अलबेली अलि रूप-माधुरी पीवत और पिवावै ॥

—गुसाईंजी के मंगल से ।

व्रजनागरि चूड़ामनि सुखसागर रस रास ।

राखो निज पद-पिंजरे मम मन हंस हुलास ॥

मम मन हंस हुलास नित बढ़ै दिन दिन अतिभारी ।

रहै सदा चित चोप लषत ज्यों चातक वारी ॥

कामी के मन काम दाम ज्यों रंकहि भावै ।

नवल कुँवर पद प्रीति सु अलबेली अलि पावै ॥

जागत नैनन में रहो सोवत सपने माँहि ।

चलत फिरत इक छिन कभूँ अंतर परिहै नौहि ॥

अंतर परिहै नौहि निरखि तुव वदन किशोरी ।

प्रेम छुके दिन रैन रहैं दृग चंदचकोरी ॥

—विनय कुंडलिया से ।

आलम नाम के दो कवि हुए हैं—एक सुप्रसिद्ध शेख रंगरेजिन का प्रेमी आलम, जो मुगल सम्राट् अकबर के समय में हुआ और जिसने माधवानल कामकंदला और स्यामसनेही या रुक्मिणी व्याहलो नामक ग्रंथों की रचना की । दूसरा आलम औरंगजेब के द्वितीय पुत्र मुअज्जम के आश्रित था, जिसकी रचना का एक उदाहरण सरोजकार ने अपने ग्रंथ में दिया है । इस त्रिवर्षी में इसी दूसरे आलम के बनाए हुए 'सुदामाचरित्र' के विवरण लिए गए हैं । यह खड़ी बोली में लिखा गया है और इसमें अरबी तथा फारसी के शब्दों का प्रयोग भी काफी हुआ

है। नीचे हम इनकी सरोजवाली कविता तथा 'सुदामाचरित्र' से कुछ उद्धरण देते हैं, जिससे तुलना करने में सरलता होगी।

१—सरोज में दी हुई कविता

जानत औलि किताबनि को जे निसाफ के माने कहे हैं ते चीन्हें ।
पालत हो इत आलम को उत नीके रहौम के नाम को लीन्हें ॥
मोहमशाह तुम्हें करता करिखे कौ दिलीपति हैं बर दोन्हें ।
काबिल हैं ते रहैं कितहूँ कहूँ काबिल होत हैं काबिल कीन्हें ॥

२--सुदामाचरित्र से उद्धृत कविता

ओंकार है अलष निरंजन कैसा कृष्ण गोवर्धनधारी ।
 नादर सबके कादर सिर पै सुंदर तन घनश्याम सुरारी ॥
 सूरति खूब अजायब मूरति आलम के महबूब बिहारी ।
 जगमग जग है जमाल जगत में हिलमिल दिल की जय बलिहारी ॥
 सत सुनाम अस बहुत बंदगी जो इसको नीके कर जाने ।
 ज्यों ज्यों याद करे वह बंदा त्यों त्यों वह नीके कर जाने ॥
 देषो कर्म कियो वामन ने जो कछु दिया सो मन में जाने ।
 ऐसे कौन बिना गिरिधारी जो गरीब के दुष को भाने ॥

× × × ×
 केते रतन पारखी परखे जेवर कितिक सुनार गढ़त हैं ।
 केते बाजीगर और नचुआ केते नचुआ नाच करत हैं ॥
 केते बाजार चहुँ खंड दीसे केतिक अखारन मल्ल लरत हैं ।
 केते जमींदार हैं ठाढ़े अपनी अपनी अरज करत हैं ॥

देहा

गदागीर रषम सुखन सुदामा, श्रीकृष्णचंद्र को मार ।

आलम में प्रगटत भए सब राजन सिरदार ॥

सरोज और सुदामाचरित्र दोनों ही की रचना में विदेशी शब्दों का प्रायः एक सा व्यवहार है। आलम की प्रवृत्ति अपनी छाप को बहुधा श्लिष्ट पद के रूप में रखने की है। दोनों स्थानों की कविता समान

विविध

३६५

संग्रह के सब से पुराने आदर्श का काल संवत् १५२८ है। अतः उसमें उद्धृत रासो के पद्य यह सिद्ध करते हैं कि मूल रासो सं० १५२८ के पूर्व अवश्य विद्यमान था। पद्यों की देश्य प्राकृत या अपभ्रंश भाषा काफी पुरानी, पृथ्वीराज के काल की ही है। मुनि जिनविजय जी ने अपनी प्रस्तावना के तीसरे पृष्ठ पर पृथ्वीराजप्रबंध का रचनाकाल सं० १२६० बताया है। तो जिस रासो से वे पद्य उसमें उद्धृत हैं वह अवश्य इससे और पहले का, अर्थात् विक्रम की १३वीं शती के मध्य का, होगा। पृथ्वीराजप्रबंध के उक्त रचनाकाल को काफी प्रामाणिक न माना जाय तो भी उन पद्यों की भाषा से यह निश्चित होता है कि मूल रासो उक्त काल से बाद का नहीं हो सकता; क्योंकि वह अवश्य ही 'राव जेतसी रो छंद' या पुरानी हिंदी की किसी भी निश्चित काल की रचना से सैकड़ों वर्ष पुराना सिद्ध होता है। "पृथ्वीराजविजय महाकाव्य चौहानों के इतिहास का बहुत अच्छा साधन है, परंतु मूल रासो संभवतः उससे कहीं अधिक संपूर्णांग और ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण पाया जायगा" और सुर्जनचरित महाकाव्य संभवतः संस्कृत में उसका सार माना जायगा। इस प्रकार उक्त अनुसंधानों से यह महत्त्वपूर्ण विचार प्रामाणिकता से उपस्थित होता है कि पृथ्वीराजरासो मूलतः सम्राट् पृथ्वीराज के समय में उसके राजकवि चंद का रचा पृथ्वीराज-यशोवर्णन-विषयक तत्कालीन अपभ्रंश भाषा का, अब से कहीं छोटा, बहुत लोकप्रिय ऐतिहासिक महाकाव्य था जो दीर्घ कंठपरंपरा से अपने विषय और भाषा में धीरे धीरे ऐसा परिवर्द्धित और परिवर्तित हुआ कि अपने वर्तमान रूप में वह बहुत विकृत और व्याहत हो रहा।

अब आवश्यकता यह है और ये महत्त्वपूर्ण अनुसंधान प्रेरणा करते हैं कि पृथ्वीराजरासो के प्राचीन संस्करणों के लिये गहरी खोज की जाय—बोकारनेर के उक्त संस्करण का तो यथासंभव शीघ्र आलोचनात्मक संपादन प्रकाशित हो—जिससे उपर्युक्त विचार पुष्ट हो और हिंदी के इस प्रथम महाकाव्य का शोध यथार्थतः निर्णीत हो।

‘सभ्यता की समाधि’ में योग इंस्टीट्यूट के प्रकाशन

ज्योर्जिया, अमेरिका के ओग्लोथोर्प विश्वविद्यालय ने मई १८३५ ई० में बीसवीं शती तक की मानवीय सभ्यता की प्रतिनिधि वस्तुओं का संग्रह कर उन्हें ६००० वर्ष बाद की मानवीय संतति के ज्ञानार्थ एक समाधि में सुरक्षित करने का महान ऐतिहासिक समारंभ उठाया। पाँच वर्षों तक प्रतिनिधि वस्तुओं का संग्रह हुआ। मानवीय इतिहास में श्रेष्ठ मूल्य के ७८३ ग्रंथ समाधि के लिये चुने गए। उनमें बंबई के योग इंस्टीट्यूट के ७ प्रकाशन भी हैं, जिन्हें उसके संस्थापक-प्रधान श्री योगेंद्र ने संपादित किया है। गत २५ मई १८४० ई० को वह सभ्यता की समाधि मुद्रित हो गई। ८११३ ई० तक उसे मुद्रित रहना है। यह सूचना हमें योग इंस्टीट्यूट के मंत्री के द्वारा मिली है।

उक्त सम्मान पर योग इंस्टीट्यूट हमारी बधाई का पात्र है। उसके सुरक्षित ग्रंथों के द्वारा संभवतः उस सुदूर भविष्य में भारत की प्राचीन योगशिक्षा का प्रामाणिक परिचय सुलभ होगा।

‘हिंदी’

हिंदी भाषा तथा नागरीलिपि के संरक्षण और प्रसार के उद्देश्य से काशी नागरीप्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में यह मासिक पत्रिका गत मार्गशीर्ष से निकलने लगी है। सभा के सभापति आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में ही हम हिंदी-प्रेमियों से इसके संबंध में अनुरोध करते हैं—

हमारी परंपरागत भाषा को हमारे व्यवहारों से अलग करने का प्रयत्न बहुत दिनों से चल रहा है, पर अपनी स्वाभाविक शक्ति से यह अपना स्थान प्राप्त करती चली आ रही है। इधर जब से हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की चर्चा छिड़ी है तब से इसके विरोधी बड़े प्रचंड वेग से इसकी गति रोकने के अनेक उपाय रचने में लग गए हैं। इस अवसर पर अपनी भाषा की रक्षा का भरपूर उद्योग हमने न किया तो सब दिन के लिये पछताना पड़ेगा। पर हममें से अधिकतर लोगों को यह भी पता नहीं है कि हिंदी को उखाड़ फेंकने के लिये कितने चक्र किन किन रूपों

विविध

३६७

में कहाँ कहाँ चल रहे हैं। यही देखकर यह 'हिंदी' पत्रिका निकाली गई है। यह इस बात पर बराबर दृष्टि रखेगी कि अनिष्ट की आशंका कहाँ कहाँ से है और समय समय पर अपनी सूचनाओं द्वारा हिंदीप्रेमियों से स्थिति पर विचार करने और आवश्यक उद्योग करने की प्रेरणा करती रहेगी।

हमें पूरा विश्वास है कि समस्त देशभक्त और भातृभाषाप्रेमी सज्जन इस पत्रिका की सहायता हर प्रकार से—धन से, लेख से, आवश्यक बातों की सूचना से, अवसर के अनुकूल परामर्श से—करेंगे और यह अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करेगी।

कार्तिक-ग्रंथ के चित्र

पत्रिका के गत कार्तिक के ग्रंथ में 'काशी-राजघाट की खुदाई' शीर्षक लेख से संलग्न चित्र, 'राजघाट की खुदाई का एक दृश्य' भारत-कला-भवन के सहायक संग्रहाध्यक्ष श्री विजयकृष्ण के सौजन्य से प्रकाशित हुआ है। वह उनके निजी संग्रह के एक फोटो से तैयार हुआ है। हमें खेद है कि यह कृतज्ञता हम यथास्थान न प्रकाशित कर सके।

उस ग्रंथ के दूसरे लेख, 'राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन', से संलग्न १२ चित्र भारत-कला-भवन में संगृहीत खिलौनों से श्री अंबिकाप्रसाद दुबे के द्वारा तैयार कराए गए हैं।

—क।

सभा की प्रगति

पुस्तकालय

कार्तिक में पुस्तकालय के सहायकों की संख्या १०६ थी। ३ नए सहायक बने और ६ सहायकों ने अपने नाम कटा लिए, जिससे माघ के अंत में सहायकों की संख्या ११० रही।

प्रकाशकों से पुस्तकें मँगाने के लिये ६० कार्ड भेजे गए जिनमें से २१ पर सफलता प्राप्त हुई। इनके अतिरिक्त भी कई प्रकाशकों ने अपनी पुस्तकें पुस्तकालय को भेंट कीं।

कार्तिक के अंत में हिंदी विभाग की छपी पुस्तकों की संख्या १५४३२ थी। १७० नई पुस्तकें प्राप्त हुईं। अब छपी पुस्तकों की संख्या १६६०२ है।

इस अवधि में ७२ दिन पुस्तकालय खुला रहा।

हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज

गत कार्तिक मास में राय साहब ठाकुर शिवकुमार सिंह से सभा ने हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के कार्य का निरीक्षण कराया। ठाकुर साहब ने बड़ी लगन और परिश्रम से यह कार्य संपन्न किया जिसके फल-स्वरूप खोज के एक एजेंट पं० बाबूराम बिथरिया को अलग कर देना पड़ा। उनके स्थान पर श्री महेशचंद्र गर्ग एम० ए० नए एजेंट नियुक्त किए गए हैं। पुस्तकों के विवरण लेने का काम नियमित रूप से हो रहा है।

प्रकाशन

प्रकीर्णक पुस्तकमाला में 'त्रिवेणी' और सूर्यकुमारी-पुस्तकमाला में 'हिंदी गद्य-शैली का विकास' का नया संस्करण छपकर प्रकाशित

हो गया। खेद है कि आर्थिक कठिनाई तथा कागज आदि की महँगी के कारण सभा को इस वर्ष की स्वीकृत कई पुस्तकों का छापना स्थगित कर देना पड़ा। पर जिन मालाओं की स्थायी निधियाँ हैं उनका छापना नहीं बंद किया गया है। बालाबख्श राजपूत चारण पुस्तक-माला में 'राजरूपक' तथा देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला में 'मोहें जो दड़ो' नाम की पुस्तक छप रही है। राजरूपक डिंगल भाषा का बहुत प्रसिद्ध और उच्च कोटि का ग्रंथ है। इसके संपादक जोधपुर के वयोवृद्ध अनुभवी विद्वान् पं० रामकर्ण जी हैं। 'मोहें जो दड़ो' भी प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति-संबंधी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इसके लेखक हैं श्री सतीशचंद्र काला, एम० ए०।

हिंदी व्याकरण का नया संस्करण छापने का निश्चय हो चुका है। संचिप्त शब्दसागर का संशोधित और प्रवर्धित संस्करण प्रकाशित होगा। संशोधन तथा नए शब्दों के संग्रह का कार्य श्री रामचंद्र वर्मा कर रहे हैं।

श्री महेंदुलाल गर्ग विज्ञान ग्रंथावली

सरकारी कृषि विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर श्री प्यारेलाल गर्ग ने अपने स्वर्गीय पिता श्री महेंदुलाल गर्ग के नाम से उक्त ग्रंथावली प्रकाशित करने के लिये सभा को १०००) देने का निश्चय किया है, जिसमें से १००) वे दे भी चुके हैं। उक्त धन के दाता महोदय कृषि-शास्त्र के शब्दों का संग्रह भी स्वयं तैयार कर रहे हैं। संग्रह तैयार हो जाने पर उस पर विद्वानों की सम्मति भी ली जायगी।

श्रीमती रुक्मिणी तिवारी पुस्तकमाला

सभा के स्वर्गीय सभासद् अजमेर के राय साहब पं० चंद्रिका-प्रसाद तिवारी की सुपुत्री श्रीमती रामदुलारी दुबे ने अपनी स्वर्गीया माता श्रीमती रुक्मिणी तिवारी की स्मृति में, उन्हीं के नाम से, शिशुओं और महिलाओं के लिये उपयोगी एक पुस्तकमाला प्रकाशित करने के निमित्त सभा को कृपा कर २०००) देना स्वीकार किया है, जिसमें से १०००) वे दे चुकी हैं।

४००

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

उक्त दोनों दाताओं को सभा हृदय से धन्यवाद देती है।

अदालती फार्मों का संग्रह

हिंदी भाषा में सर्वसाधारण के काम में आनेवाले कचहरी के सभी प्रकार के कागजों और फार्मों के एक संग्रह की बड़ी आवश्यकता थी। हर्ष की बात है कि आजमगढ़ के श्री परमेश्वरीलाल गुप्त सभा के लिये इस कार्य का संपादन कर रहे हैं। इस संग्रह से केवल हिंदी जाननेवाली जनता की एक बड़ी कठिनाई दूर हो जायगी।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

पत्रिका के वर्ष ४४ के प्रथम, तृतीय और चतुर्थ अंक की प्रतियाँ समाप्त हो जाने के कारण सभा ने एक पत्र द्वारा सभासदों से प्रार्थना की थी कि जो सभासद फाइल न रखते हों वे कृपा कर अपनी प्रतियाँ सभा को प्रदान करें, जिससे जिन सभासदों को उनकी आवश्यकता है उन्हें वे दी जा सकें। अभी तक केवल एक ही सभासद ने अपनी प्रतियाँ देने की कृपा की है। सभा पुनः सभासदों से अपनी प्रार्थना दोहराती है।

रामप्रसाद समादरोत्सव

गत २२ मार्गशीर्ष को प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर पं० अमरनाथ झा के सभापतित्व में एक उत्सव किया गया, जिसमें मुगल शैली के एकमात्र प्रतिनिधि चित्रकार काशी-निवासी श्री रामप्रसाद को ८५०) की शैली उत्सव के सभापति द्वारा सभा के कलाभवन की ओर से भेंट की गई।

प्रचार

गत दिसंबर मास के अंत में मद्रास में दक्षिणभारत-हिंदी-प्रचार-सभा और जनवरी के आरंभ में पंजाब-प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन हुए। द० भा० हिं० प्र० सभा ने अपने प्रचारक सम्मेलन और पं० प्रा० सा० सम्मेलन ने अपने शिक्षा-सम्मेलन के सभापतित्व के लिये सभा के उपसभापति पंडित रामनारायण मिश्र

को आमंत्रित किया। मिश्रजी ने हिंदी-प्रचार-व्रती होने के नाते उस समय अस्वस्थ रहते हुए भी काशी से मद्रास, हैदराबाद और पंजाब की लंबी यात्रा का कष्ट स्वीकार किया। फिर १ फरवरी को वे जौनपुर जिला हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के १६ वें वार्षिकोत्सव के सभापति हुए। उक्त तीनों उत्सव मिश्रजी के सभापतित्व में खूब सफल रहे और उन संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को नया उत्साह प्राप्त हुआ।

१ ज्येष्ठ से ३० माघ १९८७ तक सभा में २५) या अधिक दान देनेवाले सज्जनों की नामावली

प्राप्ति-तिथि	दाता का नाम	धन प्रयोजन
६ ज्येष्ठ	युक्तप्रांतीय सरकार	७५०) पुस्तकालय
२४ श्रावण		
२१ कार्तिक		
११ ज्येष्ठ	श्री सूर्यनारायण व्यास, उज्जैन	१००) स्थायी कोष
१३ आषाढ़	श्री घनश्यामदास बिड़ला, बंबई	२५०) कलाभवन
७ श्रावण	श्री घनश्यामदास पोद्दार, बंबई	१०१) स्थायी कोष
११	श्री नंदकिशोर लोहिया, कलकत्ता	१०१) "
१७	श्री भागीरथ कानोड़िया, कलकत्ता	१५०) कलाभवन
२०	श्री राय कृष्णदास, काशी	५०) "
२६ भाद्रपद	श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया,	{ ४००) कूप
	कलकत्ता	{ १००) कला-भवन
२७	श्री मुरारीलाल केडिया, काशी	५०) "
५ आश्विन	श्री रामेश्वर गौरीशंकर ओझा, अजमेर	१००) स्थायी कोष

४०२

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

प्राप्ति-तिथि	दाता का नाम	धन	प्रयोजन
१६ आश्विन	श्री रत्नचंद कालिया, कानपुर	१००)	स्थायी कोष
२६ "	श्री हरीचंद खन्ना, कानपुर	१००)	"
२६ "	श्री रायबहादुर रामदेव चोखानी, कलकत्ता	१००)	नागरीप्रचार
२६ "	श्री डा० सच्चिदानंद सिन्हा, पटना	१००)	स्थायी कोष
३० "	श्री कुँवर सुरेश सिंह, कालाकांकर	१००)	" "
१ कार्तिक	श्री सेठ जुगुल किशोर बिड़ला, नई दिल्ली	२५०)	कलाभवन
११ "	श्री म० कृष्णजी बी० ए०, लाहौर	१००)	स्थायी कोष
१६ "	श्री प्रो० अमरनाथ झा, प्रयाग	५०)	रामप्रसाद समादर कोष
१८ "	श्री सेठ पदमपत सिंहानिया, कानपुर	१००)	स्थायी कोष
४ मार्गशीर्ष	श्री कप्तान राव कृष्णपालसिंह आगरा	१००)	स्थायी कोष
१२ "	श्री सेठ चंपालाल बाँठिया बीकानेर	१०१)	" "
१६ "	श्रीमती रामदुलारी देवी अजमेर	१०००)	श्रीमती रुक्मिणी देवी ग्रंथ माला
१६ "	प्रांतीय सरकार	५००)	खोज विभाग
२२ "	श्री एन० सी० मेहता, आइ० सी० एस० लखनऊ	२५)	श्रीरामप्रसाद समादर कोष
१६ पौष	श्रीमहाराजकुमार डा० खुवीरसिंह, एम० ए० डी० लिट्, सीतामऊ	४०१)	कलाभवन
" "	" "	१००)	स्थायी कोष
२३ "	श्री डा० अमूल्यचरण उकील कलकत्ता	२५)	फुटकर
२४ "	श्री लाला बनवारीलाल काशी	१००)	नागरीप्रचार
२६ "	श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया कलकत्ता	५००)	कलाभवन
१ माघ	श्री सतीशकुमार बरेली	१०१)	नागरीप्रचार
" "	श्री लाला लालचंद लाहौर	१००)	स्थायी कोष

सभा की प्रगति

४०३

प्राप्ति-तिथि	दाता का नाम	धन प्रयोजन
१ माघ	श्री शिवप्रसाद जी गुप्त काशी	१५१) श्रीरामप्रसाद समादर कोष
७ "	श्री राय रामचरण अग्रवाल प्रयाग	२५) " " "
७ माघ	श्री राय रामकिशोर अग्रवाल प्रयाग	३०) श्री रामप्रसाद समादर कोष
६ "	श्री प्रो० हरि रामचंद्र दिवेकर उज्जैन	१००) स्थायी कोष
११ "	श्री साहु रामनारायणलाल बरेली	१००) "
१८ "	श्री राय गोविंदचंद्र काशी	१००) श्री रामप्रसाद समादरकोष
३० "	श्री भरतराम दिल्ली	१००) स्थायी कोष

[टि० — जिन सज्जनों के चंदे किस्त से आते हैं उनके नाम पूरे चंदे प्राप्त होने पर प्रकाशित किए जायेंगे ।]

हिंदी-प्रचारिणी संस्थाएँ

हिंदी की सेवा में लगी हुई जितनी मुख्य संस्थाओं के नाम अब तक सभा को प्राप्त हो सके हैं उनकी सूची—

असम

असम-हिंदी-प्रचार समिति, गुवाहाटी, असम ।

नौगाँव राष्ट्रभाषा विद्यालय, असम ।

विद्योत्साही समिति, मनौपुर, असम ।

उत्कल

उड़ीसा प्रांतीय हिंदी छात्रसम्मेलन, पुरी, (उड़ीसा) ।

उत्कल प्रांतीय हिंदी - प्रचार - समिति, उड़िया बाजार, कटक, (उड़ीसा) ।

कश्मीर

हिंदीप्रचारिणी सभा, जम्मू ।

हिंदी साहित्य-परिषद, श्रीनगर ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

दिल्ली

गुरुकुल, इंद्रप्रस्थ, दिल्ली ।

मारवाड़ी हिंदी पुस्तकालय, दिल्ली ।

हिंदी प्रचारिणी सभा, दिल्ली ।

हिंदी साहित्यसभा, रीडिंग रोड, नई दिल्ली

पंजाब

नागरीप्रचारिणी सभा, स्यालकोट ।

राष्ट्रभाषाप्रचारक संघ, करुण काव्य-कुटीर, कृष्णनगर, लाहौर ।

विद्याप्रचारिणी सभा, हिसार ।

साहित्य सदन, अमृतसर ।

हिंदी-पाठशाला, चंबा ।

हिंदी-प्रचारिणी सभा, फीरोजपुर ।

हिंदी-प्रचारिणी सभा, शिमला ।

बंगाल

बजरंग परिषद, कलकत्ता ।

श्री बटुकनाथ ग्रंथालय, पो० अजीमगंज, मुर्शिदाबाद ।

हिंदी परिषद, विद्यासागर कालेज, कलकत्ता ।

हिंदीभवन, शांतिनिकेतन, बालपुर ।

हिंदी संघ, संत जेवियर कालेज, कलकत्ता ।

हिमाचल हिंदीभवन, दार्जीलिंग ।

बंबई

अखिल महाराष्ट्र हिंदी-प्रचार-समिति, ३७३ शनिवार पेठ, पूना २ ।

गुरुकुल विद्यामंदिर, सूपा, वाया नवसारी, सूरत ।

मारवाड़ी हिंदी पुस्तकालय, कालवादेवी रोड, बंबई ।

राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, भावनगर, काठियावाड़ ।

श्री फतहचंद जैन विद्यालय, चिंचवड़, जि० पूना ।

श्रीमद्भयानंद निःशुल्क हिंदी विद्यालय, श्रद्धानंद स्मारक मंदिर, कोल्हापुर ।

हिंदी प्रचारक मंडल, गांधी चौक, सूरत ।

सभा की प्रगति

४०५

हिंदी-प्रचारक विद्यालय, धारवाड़ ।

हिंदी-प्रचार कार्यालय, खाड़िया अमृतलाल की पोल,
अहमदाबाद ।

हिंदी-प्रचार-संघ, पूना ।

हिंदी-प्रचार-सभा, एडनवाला मैन्शन, चौपाटी, बंबई ।

हिंदी विद्यापीठ, गिरगाँव, बंबई ।

बड़ोदा

आर्य-कन्या-महाविद्यालय, बड़ोदा ।

नागरीप्रचारिणी सभा, करेली बाग, बड़ोदा ।

बिहार

गोवर्धन साहित्य महाविद्यालय, देवघर ।

नवजीवन साहित्य परिषद, भभुआ, शाहाबाद ।

नागरीप्रचारिणी सभा, आरा (शाहाबाद) ।

नागरीप्रचारिणी सभा, भगवानपुर रत्ती, मुजफ्फरपुर ।

बालकसंघ, विष्णुपुर, पटना ।

विद्यापति हिंदी सभा, दरभंगा ।

श्री भास्कर पुस्तकालय, अलियासपुर, छपरा ।

लोकमान्यसमिति, छपरा ।

साहित्यसदन, मौंझी, सारन ।

साहित्यसमिति, धमौरा, चंपारन ।

सुहृदसंघ, मुजफ्फरपुर ।

स्वयंसेवक पुस्तकालय, सारन ।

हिंदी-साहित्य-भवन, धरफरी, मुजफ्फरपुर ।

हिंदी-साहित्य समिति, शाहाबाद ।

हिंदी-साहित्य समिति, सहसराम ।

हिंदी-हितैषिणी सभा, लालगंज ।

मद्रास

आंध्र राष्ट्र-हिंदी-प्रचार-संघ, बेजवाड़ा ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

कर्नाटक प्रांतीय हिंदी-प्रचार सभा, धारवाड़ ।
 केरल प्रांतीय हिंदी-प्रचार-सभा, त्रिपुणितुरा ।
 तमिल नाडु हिंदी-प्रचार-सभा, त्रिचनापल्ली ।
 दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर ।
 हिंदी-प्रचार-सभा, मदुरा ।
 हिंदी-शिक्षण केंद्र, उत्तर कन्नड़ ।

मध्यप्रांत

नागरीप्रचारिणी समिति, छिंदवाड़ा ।
 मध्यप्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, जबलपुर ।
 मित्रमंडल, कटनी ।
 राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति, वर्धा ।
 शारदा शांति-साहित्य-सदन, केवलारी, पथरिया (दमोह) ।
 श्री सरस्वती-वाचनालय, सागर ।
 हिंदी-साहित्य-समिति, बेतूल ।

मध्यभारत

ओड़िशा राज्य और बुंदेलखंड साहित्य-परिषद्, टीकमगढ़ ।
 मध्य भारत हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर ।
 रघुराज साहित्य-परिषद्, रीवा ।
 वीर सार्वजनिक कार्यालय, इंदौर ।
 वीरेंद्र केशव साहित्य परिषद्, ओड़िशा ।
 साहित्य सदन, सैलाना ।

युक्तप्रांत

गुरुकुल कांगड़ी, सहारनपुर ।
 गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, सहारनपुर ।
 ग्रामसुधार नाट्य परिषद्, गोरखपुर ।
 जौनपुर जिला हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, जौनपुर ।
 नागरीप्रचारिणी सभा, आगरा ।
 नागरीप्रचारिणी सभा, उन्नाव ।

सभा की प्रगति

४०७

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
 नागरीप्रचारिणी सभा, गोंडा ।
 नागरीप्रचारिणी सभा, गोरखपुर ।
 नागरीप्रचारिणी सभा, बलिया ।
 नागरीप्रचारिणी सभा, बहराइच ।
 नागरीप्रचारिणी सभा, बुलंदशहर ।
 नागरीप्रचारिणी सभा, मुरादाबाद ।
 नागरीप्रचारिणी सभा, मैनपुरी ।
 पुष्प भवन, पाढ़म, मैनपुरी ।
 प्रसाद-परिषद, काशी ।
 प्रांतीय साहित्यपरिषद, अलीगढ़ ।
 प्रेम महाविद्यालय, वृंदावन ।
 बनारस जिला हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, बनारस ।
 बरेली कालेज हिंदी-प्रचारिणी सभा, बरेली ।
 रामायण-प्रसार-समिति, बरहज, गोरखपुर ।
 लाला भगवानदीन साहित्य-विद्यालय, काशी ।
 श्रवणनाथ ज्ञान मंदिर, हरद्वार ।
 सरस्वतीसदन, हर्दोई ।
 साकेत साहित्य-समिति, फैजाबाद ।
 हिंदीपरिषद, हिंदू विश्वविद्यालय, काशी ।
 हिंदी-प्रचार मंडल, आर्यकुमार सभा, बदायूँ ।
 हिंदी-प्रचार समिति, टाँडा ।
 हिंदीप्रचारिणी सभा, हर्दोई ।
 हिंदी विद्यापीठ, प्रयाग ।
 हिंदी साहित्य-परिषद, उदयप्रताप कालेज, काशी ।
 हिंदी साहित्य परिषद, प्रयाग ।
 हिंदी साहित्य परिषद, मथुरा ।
 हिंदी साहित्य सभा, बाँदा ।

हिंदी साहित्यसमिति, सनातनधर्म कालेज, कानपुर ।
 हिंदी साहित्यसमिति, कालपी, जालौन ।
 हिंदी साहित्यसमिति, देहरादून ।
 हिंदीसाहित्यसमिति, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ।
 हिंदीसाहित्यसम्मेलन, प्रयाग ।
 हिंदीहितैषिणी सभा, सहारनपुर ।
 हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग ।

राजपूताना

नवरत्न सरस्वती-भवन, भालरापाटन ।
 भारतेन्दु साहित्य समिति, कोटा
 राजपूताना हिंदी-साहित्य-सभा, भालरापाटन ।
 राजस्थान साहित्य-परिषद्, अजमेर ।
 श्री करणीमंडल, देशनोक, बीकानेर ।
 श्री गुणप्रकाशक सज्जनालय, बीकानेर ।
 श्री जुबिली नागरीभंडार, बीकानेर ।
 श्री महावीर जैनमंडल, बीकानेर ।

सिंध

प्रियतम धर्मसभा, शिकारपुर ।
 सिंध हिंदी-प्रचार समिति, कराँची ।
 हिंदी-प्रचार सभा, बंदरोड, कराँची ।
 हिंदी-साहित्य-भवन, कराँची ।

हैदराबाद* (दक्षिण)

हिंदी-प्रचार-सभा, हैदराबाद (दक्षिण)

दक्षिण अफ्रिका

लोअर तुगेला हिंदी पाठशाला, स्टेंगर, नैटाल ।

फारस की खाड़ी

नागरीप्रचारिणी सभा, मस्कत और मन्ना ।

ब्रह्मदेश

हिंदी साहित्य-मंडल, ३०८ बारस्ट्रीट, रंगून ।

हिंदी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग के नए प्रकाशन

१—प्रेमघनसर्वस्व (प्रथम भाग)—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की संपूर्ण कविताओं का सुसंपादित और संपूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४॥॥।

२—वीरकाव्य संग्रह—हिंदी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ कविताएँ और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। संपादक श्री भागीरथप्रसाद दोक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २॥॥।

३—डिंगल में वीररस—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कविताएँ तथा उनकी साहित्यकृतियों की विस्तृत आलोचना। संपादक श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १॥॥॥।

४—संक्षिप्त हिंदी साहित्य—हिंदी साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिंदी साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक पंडित ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ॥॥॥।

५—चित्ररेखा—हिंदी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देव पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। मूल्य १॥॥॥।

आधुनिक कवि—सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखी हुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारंभ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के संबंध में प्रकाश डाला है। मूल्य १॥॥॥।

सम्मेलनपत्रिका

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की यह मुखपत्रिका है। इसमें प्रति मास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिंदी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके संपादक साहित्य-मंत्री श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १॥॥।

पता—

साहित्यमंत्री,

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

- (१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०. एल् एल् एम्० । मूल्य १।)
- (२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा । सचित्र । मूल्य ३।)
- (३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा । मू० १।)
- (४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलेमान साहब नदवी । अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा । मूल्य ४।)
- (५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन) । मूल्य ६।)
- (६) जंतु-जगत्—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी० । सचित्र । मूल्य ६।)
- (७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थवाल । सचित्र । मूल्य ३।)
- (८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास । मू० ६।)
- (९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी० । मूल्य ३।)
- (१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०, मूल्य १।)
- (११) सौर परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्० । सचित्र । मूल्य १२।)
- (१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०, सचित्र । मूल्य ३।)
- (१३) घाघ और भडूरी—संपादक, पं० रामनरेश त्रिपाठी । मूल्य ३।)
- (१४) वेलि किसन रुक्मणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए० । मूल्य ६।)
- (१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए० । सचित्र । मूल्य ३।)
- (१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेड । मूल्य कपड़े की जिल्द ३।); सादी जिल्द ३।)
- (१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा । मूल्य कपड़े की जिल्द १।); सादी जिल्द १।)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद । अनुवादक—मिर्जा अबुल्फज्जल । मूल्य १।)

(१९) हिंदो भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्. ए., डी. लिट्. (पेरिस) । मूल्य कपड़े की जिल्द ४।); सादी जिल्द ३।।)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकर-सहाय सक्सेना । मूल्य कपड़े की जिल्द ५।।); सादी जिल्द ५।)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्. ए. । मूल्य कपड़े की जिल्द ४।।); सादी जिल्द ४।)

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार । मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५।।); सादी जिल्द ५।)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्. सी. मेहता, आई. सी. एस्. । सचित्र । मूल्य सादी जिल्द ६।); कपड़े की जिल्द ६।।)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत । संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी. ए. । मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरि रामचंद्र दिवेकर, एम्. ए., डी. लिट्. (पेरिस), साहित्याचार्य । मूल्य कपड़े की जिल्द २।); सादी जिल्द १।।)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्. ए., डी. लिट्. मूल्य १।)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला । मूल्य १।)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद । अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्. ए., डी. फिल. । मूल्य १।)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव, मूल्य कपड़े की जिल्द ४।); सादी जिल्द ३।।)

(३०) भारतेन्दु हरिश्चंद्र—लेखक, श्री ब्रजरत्नदास, बी. ए., एल्-एल्. बी. । मूल्य ५।)

(३१) हिंदी कवि और काव्य (भाग १)—संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्. ए., एल्-एल्. बी. । मूल्य सादी जिल्द ४।।); कपड़े की जिल्द ५।)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्. ए., डी. लिट्. (पेरिस) । मूल्य ॥)

(३३) रंजीतसिंह—लेखक, प्रोफेसर सीताराम कोहली, एम्. ए. । अनुवादक, श्री रामचंद्र टंडन, एम्. ए., एल्-एल्. बी. । मूल्य १।)

प्राप्ति-स्थान—हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद ।

आपको यह जानना ही चाहिए

कि

नए विचार
 नई भावनाएँ और
 राष्ट्रनिर्माणकारी नई क्रांति
 का संदेश देनेवाला
 'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र, [संपादक हरिभाऊ उपाध्याय]
 वार्षिक मूल्य २) और मंडल के ग्राहकों से १)

तथा

सस्ता साहित्य मंडल का
 नया प्रकाशन

१—बापू—ले० घनश्यामदास विड़ला, १३ सुन्दर चित्रों सहित दाम ॥१॥ सजिल्द १॥), हाथ के कागज पर २), महात्मा गाँधी की छोटी से छोटी और महान् से महान् बातों का नजदीक से तलस्पर्शी अध्ययन ।

२—खादी मीमांसा—ले० बालू भाई मेहता, मूल्य १॥१॥, खादी पर लिखी गई गिनी-चुनी पुस्तकों में से प्रधान पुस्तक ।

३—विनोबा और उनके विचार—मूल्य ॥१॥ प्रथम सत्याग्रही

आचार्य विनोबा के जीवनमय विचार ।

४—समाजवाद पूँजीवाद—मूल्य ॥१॥, वर्नाड शा की Intelligent women's guide to socialism and capitalism के आधार पर लिखी ।

५—मेरी मुक्ति की कहानी—मूल्य ॥१॥ महर्षि टाल्स्टाय के जीवन-संस्मरण और उनकी जीवन-कहानी । आपके स्थान के खादी भंडारों और प्रधान पुस्तक-विक्रेताओं के पास पहुँच गए हैं ।

यदि आप इन पुस्तकों का अभी न खरीद सके हों तो

विलंब से पूर्व ही हमें आर्डर भेजिए । संस्करण की समाप्ति की नौबत आ गई है

सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सरकस, नई दिल्ली
 शाखाएँ दिल्ली, लखनऊ, इंदौर ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

त्रैमासिक

[नवीन संस्करण]

वर्ष ४५—संवत् १९६७



संपादक-मंडल

रामचंद्र शुक्ल

मंगलदेव शास्त्री

केशवप्रसाद मिश्र

वासुदेवशरण अग्रवाल

कृष्णानंद (संपादक)

मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु,
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच

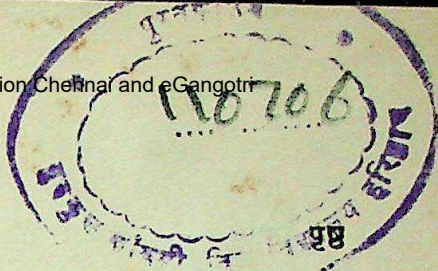
वार्षिक सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
भारतीय मुद्राएँ और उन पर हिंदी का स्थान [लेखक— श्री दुर्गाप्रसाद, बी० ए०, विज्ञानकला-विशारद, एम्० एन्० एस्०]	...	१
देवनागरी लिपि और मुसलमानी शिलालेख [लेखक—डा० हीरानंद शास्त्री, एम्० ए०, डी० लिट्०]	...	१३
राष्ट्र-लिपि के विधान में रोमन लिपि का स्थान [लेखक— डा० ईश्वरदत्त, विद्यालंकार, पी-एच्० डी०]	...	१७
नागरी और मुसलमान [लेखक—श्री चंद्रबली पांडे, एम्० ए०]	...	३५
मलिक मुहम्मद जायसी का जीवनचरित [लेखक—श्री सैयद आले मुहम्मद मेहर जायसी, बी० ए०]	...	४३
कदर पिया [लेखक—श्री गोपालचंद्र सिंह, एम्० ए०, एल्- एल्० बी०, विशारद]	...	६१
भृगुवंश और भारत [लेखक—भारतदीपक डा० विष्णु सीताराम सुकथनकर, एम्० ए०, पी-एच्० डी०]	...	१०५
बीसलदेवरासो का निर्माणकाल [लेखक—महामहोपाध्याय राय बहादुर डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डी० लिट्०]	...	१६३
काशी-राजघाट की खुदाई [लेखक—श्री राय कृष्णदास]	...	२०६
राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन [लेखक—श्री वासुदेव- शरण अग्रवाल, एम्० ए०]	...	२१५
हिंदी का चारण काव्य [लेखक—श्री शुभकर्ण बदरीदान कविया, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]	...	२२७

(२)

विषय	लेखक	पृष्ठ
प्राचीन हस्तलिखित हिंदी-ग्रंथों की खोज का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण [लेखक—डा० पीतांबरदत्त बड़वाल, एम० ए०, एल्-एल् बी०, डी० लिट०]		३१३
पृथ्वीराज रासो [लेखक—साहित्यवाचस्पति रायबहादुर श्यामसुंदरदास, बी० ए०]		३४६
रागमाला [लेखक—श्री नारायण शास्त्री आठले]		३५३
अजयदेव और सोमलदेवी की मुद्राएँ [लेखक—श्री दशरथ शर्मा एम० ए०,]		३५६
चयन		
ओरिएंटल कॉन्फरेंस के हिंदी विभाग के अध्यक्ष का भाषण [सं० श्री कृ]		७१
निचुल और कालिदास [सं० श्री कृ]		१७३
पंजाब में हिंदी [सं० श्री कृ]		१७५
छत्रसालदशक का अनस्तित्व [सं० श्री कृ]		२५९
पृथिवीपुत्र [सं० श्री कृ]		२६६
दक्षिणभारत-हिंदी-प्रचारक-सम्मेलन के सभापति का अभिभाषण [सं० श्री कृ]		३५६
हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का अभिभाषण [सं० श्री कृ]		३६४
समीक्षा		
आवारे की युरोपयात्रा [सं० श्री रामचंद्र श्रीवास्तव]		८९
हिंदीसाहित्य का सुबोध इतिहास [सं० श्री पद्म]		६१
उमर खैयाम की रुवाईयाँ [सं० श्री कृ]		१८१
द्रव्यसंग्रह [सं० श्री कैलाशचंद्र शास्त्री]		१८७
छहढाला [सं० श्री कैलाशचंद्र शास्त्री]		१८८
गुटका गुरुमत-प्रकाश [सं० श्री सच्चिदानंद तिवारी एम० ए०]		१६०
सुखमनी [सं० श्री सच्चिदानंद तिवारी एम० ए०]		१६१

(३)



विषय	लेखक	पृष्ठ
रामचन्द्र संसार [स० श्री रामबहोरी शुक्ल]	...	१६१
योग के आधार [स० श्री रामचंद्र वर्मा]	...	२७५
गोरखनाथ एंड मिडीवल हिंदू मिस्टिसिज्म [स० श्री चंद्रबली पांडे एम० ए०]	...	२७६
कामुक [स० श्री जगन्नाथप्रसाद शर्मा एम० ए०]	...	२८१
• आधीरात [स० श्री चित्रगुप्त]	...	२८२
दर्जविज्ञान [स० श्री मतीकृष्णकिशोरी]	...	२८५
कानून कर आमदनी भारतवर्ष १६२२ [स० श्री ब्रजरत्नदास]	...	२८७
कानून कब्जा आराजी संयुक्त प्रांत १६३६ [स० श्री ब्रजरत्नदास]	...	२८७
नेताओं की कहानियाँ [स० श्री खानचंद गौतम]	...	२८८
जीवित मूर्तियाँ [स० श्री खानचंद गौतम]	...	२८८
वीणा [स० श्री चित्रगुप्त]	...	२८९
जीवन साहित्य [स० श्री शं० वा०]	...	२९०
आरती [स० श्री शं० वा०]	...	२९१
मारवाड़ का इतिहास प्रथम भाग [स० श्री अवधविहारी पांडेय]	...	३७७
हिल्लोल [स० श्री रा० ना० शं०]	...	३८०
प्रभुमति के दोहे [स० श्री जीवनदास]	...	३८२
साहित्यसंदेश का उपन्यास-अंक [स० श्री शं० वा०]	...	३८३
आकाशवाणी [स० श्री शं० वा०]	...	३८४
विविध		
उपनिवेशों में हिंदी-प्रचार [ले० श्री कृ०]	...	६३
आभार-स्वीकृति [ले० श्री कृ०]	...	९८
एक विचारणीय शब्द [ले० श्री कृ०]	...	६९
जापानी अंतर्राष्ट्रीय निबंध-प्रतियोगिता	...	१००
महाभारत का संशोधित संस्करण [ले० श्री० कृ०]	...	१६६
वाहीक ग्रामों के शुद्ध नाम [ले० श्री वासुदेवशरण]	...	२००
पंजाब में हिंदी आंदोलन [ले० श्री कृ०]	...	२०२

(४)

विषय	लेखक	पृष्ठ
संस्कृत का महत्त्व [ले० श्री कु] ...	...	२९७
भारत की प्रादेशिक भाषाओं के लिये समान वैज्ञानिक शब्दावली [ले० श्री कु] ...	...	३०३
बहुमूल्य प्राचीन ग्रंथ संपत्ति अमेरिका गई [ले० श्री कु] ...	...	३६०
पृथ्वीराजरासो संबंधी शोध [ले० श्री कु] ...	...	३६१
'सभ्यता की समाधि' में योग इंस्टीट्यूट के प्रकाशन [ले० श्री कु] ...	...	३६६
'हिंदी' [ले० श्री कु] ...	...	३९६
कार्तिक-अंक के चित्र [ले० श्री कु] ...	...	३६७
सभा की प्रगति [ले० श्री सहायक मंत्री]	१०१, २०६, ३०९, ३९८	
हिंदी-प्रचारिणी संस्थाएँ [ले० श्री सहायक मंत्री]...	...	

सभा की नई प्रकाशित पुस्तकें

भारतीय मूर्तिकला

(लेखक—श्री राय कृष्णदास)

इस पुस्तक में मोहन जो दड़ो के समय से लेकर आज तक की भारतीय मूर्तिकला का वर्णन बड़ी सरल भाषा में किया गया है। साथ ही इस कला के सौंदर्य की विशेषताएँ एवं तात्त्विक व्याख्या भी दी गई है। अपने ढंग की हिंदी ही में नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में यह पहली पुस्तक है। पृष्ठसंख्या २३९ + १३, ३९ चित्र तथा मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य १), विशिष्ट संस्करण १।)

भारत की चित्रकला

(लेखक—श्री राय कृष्णदास)

यह तथा भारतीय मूर्तिकला संबद्ध प्रकाशन हैं। इसमें अपने देश की महान् चित्रकला का अथ से इति तक का इतिहास, सौंदर्य-निरीक्षण एवं उसके मर्म की बातें तो हैं ही, साथ ही लेखक ने लगभग ३० बरस के अपने गंभीर अध्ययन का सारांश भी दिया है जिससे भारतीय चित्रकला के इतिहास-विषयक कई महत्त्वपूर्ण नई बातों का उद्घाटन हुआ है और नया प्रकाश पड़ा है। यह भी अपने ढंग की हिंदी ही में नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में पहली पुस्तक है। पृष्ठसंख्या १८० + १६, चित्रसंख्या २७ (सादे) + १ (रंगीन) मैटर के साथ अनेक रेखा-आकृतियाँ। मूल्य १), विशिष्ट संस्करण १।)

बाल-मनोविज्ञान

(लेखक—प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी०)

आजकल बालकों की शिक्षा और सुधार के लिये बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान कितना आवश्यक है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। ठोक-पीटकर बालकों को पढ़ाने और दुरुस्त करने का समय अब बहुत पीछे चला गया। अब सभी बुद्धिमान लोग समझने लगे हैं कि बालकों को ठोकने-पीटने के बदले हमें उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का पता लगाना चाहिए। उन्हीं प्रवृत्तियों का अनुसरण करके हम उन्हें बड़े से बड़ा आदमी बना सकते हैं। बाल-मनोविज्ञान में बड़ी सरल और सुबोध भाषा में लेखक ने बालकों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करके उन्हें समझाया है। पृष्ठसंख्या २६०, मूल्य १।)

कचहरी की भाषा और लिपि

(लेखक—श्री चंद्रबली पांडे, एम० ए०)

कचहरियों में इतिहास के भिन्न भिन्न कालों में किस प्रकार की लिपि और भाषा का प्रचार रहा है तथा इस समय वस्तुतः कचहरी की भाषा और

लिपि कौन सी होनी चाहिए, इसी का विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक अवश्य पठनीय है। पृष्ठसंख्या १७६, मूल्य ॥॥)।

भाषा का प्रश्न

(लेखक—श्री चंद्रबली पांडे, एम० ए०)
आज-कल हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी के भगड़े के कारण भाषा की समस्या बहुत ही जटिल हो गई है। किंतु लेखक ने कई लेख लिखकर इस पुस्तक में इस प्रश्न को बहुत अच्छी तरह सुलझाया है। पृष्ठसंख्या १८८, मूल्य ॥॥)।

मुगल बादशाहों की हिंदी

(लेखक—श्री चंद्रबली पांडे, एम० ए०)
इस पुस्तक में लेखक ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि मुसलमान बादशाह हिंदी से प्रेम करते थे और हिंदी में रचना भी करते थे। पृ० सं० १०४, मूल्य ॥॥)।

मुल्क की जबान और फाजिल मुसलमान (उर्दू में)

(संपादक—शाह साहब नासिरुद्दीनपुरी)
इस पुस्तक में नागरी लिपि और हिंदी भाषा के संबंध में मुसलमान विद्वानों की सम्मतियाँ संगृहीत की गई हैं। मूल्य २)।

रघुनाथरूपक गीताँ रो

(संपादक—श्री महताब चंद खारैड़, विशारद)
डिगल-भाषा के महाकवि संछ (मनसाराम) का यह प्रसिद्ध ग्रंथ संवत् १८८३ वि० में लिखा गया था। इसमें श्री रामचंद्रजी की कथा का बड़ा कवित्वपूर्ण वर्णन है और साथ ही यह डिगल-भाषा का अत्यंत प्रामाणिक रीतिग्रंथ भी है। खारैड़ जी ने डिगल छंदों का हिंदी में शब्दार्थ और भावार्थ देकर इस ग्रंथ का बड़ी योग्यता के साथ संपादन किया है। आरंभ में पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए०, विद्याभूषण की लिखी हुई महत्त्वपूर्ण भूमिका है। पृष्ठ-संख्या ३६०, सजिल्द, मूल्य २)।

संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर

(संपादक—बा० रामचंद्र वर्मा)
हिंदी का यही एक छोटा, सस्ता और सबसे अच्छा शब्दकोष है। यह बड़े हिंदी शब्दसागर का ही संक्षिप्त रूप है। नया संस्करण अभी छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठसंख्या १२००, मूल्य ४)।

मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

य
म
त
थ
—
म
ह
र

Compiled
1999-2000

